एम.ए.एच.आई. –04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. - 04

ऐतिहासिक चिन्तन – 4

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-4

इकाई संख्या

इकाई 14	
बाबरनामा, अकबरनामा तथा सुजन राय भन्डारी की कृति खुला सतुन्तवारीख	5–17
इकाई 15	
राजस्थान का ख्यात एवं बाट साहित्य	18–29
इकाई 16	
गुजराती रासमाला साहित्य का ऐतिहासिक महत्व	30–39
इकाई 17	
भारतीय इतिहास एवं इतिहास लेखन का यूरोपीय मत	40–45
इकाई 18	
स्वतंत्रय - पूर्व भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन - आर.सी. दत्त एवं दादा भाई नौरोजी	46–56

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रो. के.एस. गुप्ता
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष
मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. बी.के. शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

प्रो. मन्सूरा हैदर
इतिहास विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिमविश्वविद्यालय, अलीगढ़

डा. विक्रम सिंह राठौर
इतिहास विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्रो. सीताराम सिंह
इतिहास विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

डा. नारायण सिंह भाटी
पूर्व निदेशक, चौपासनी
शोध संस्थान, जोधपुर

डा. अमित मुकर्जी
इतिहास विभाग,
सेन्ट जान्स कॉलेज, आगरा।

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. ब्रजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा
निदेशक(**अकादमिक**)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन- Oct 2012 MAHI-04/ISBN No.-13/978-81-8496-263-5

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई – 14

बाबरनामा, अकबरनामा तथा सुजन राय भन्डारी की कृति खुलासतुत्तवशिख

इकाई की रूपरेखा:

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 ऐतिहासिक स्त्रोतों में बाबर नामा, अकबरनामा तथा खुलासतुत्तवशिख का महत्व
14.3 बाबरनामा – बाबर के बौद्धक जीवन पर आनुवंशिकता तथा वातावरण का प्रभाव
14.4 बाबर की उपलब्धियां – विद्धता के क्षेत्र में
14.5 बाबरनामा
14.6 बाबरनामा एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में
14.7 अकबरनामा
14.8 अबुलफज़ल की जीवनी
14.9 अबुलफजल की कृतियां
14.10 खुलासतुत्तवशिख के लेखक सुजन राय
14.11 खुलासतुत्तवशिख एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में
14.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई से हमारा उद्देश्य आप को मुगल काल के तीन ऐतिहासिक स्रोतों की जानकारी देना है । ऐतिहासिक स्रोत वैसे भी अपने युग विशेष का दर्पण होते है परन्तु यह तीनों कृतियां समकालीन होने के अतिरिक्त बहुमूल्य ज्ञप्ति से भरपूर है । इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आप को निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो जाएगा ।

– ऐतिहासिक स्रोतों में बाबर नामा, अकबार नामा तथा खुलासतुत्तवशिख का महत्व
– इन तीनों स्रोतों के लेखकों तथा उनकी जीवनी तथा दृष्टिकोण एवं अभिवृत्ति का बोध
– ऐतिहासिक सूचनायें तथा उनकी विवेचना
– स्त्रोतों के गुणों –दोषों पर विश्लेषणात्मक टिप्पणी

14.1 प्रस्तावना

अतीत के दिग्दर्शन के लिए साहित्य एवं इतिहास एक महत्वपूर्ण स्रोत है । बाबरनामा आत्मकथा है तो अकबरनामा एक दरबारी द्वारा रचित कृति–खुलासतुत्तवशिख पूर्ण रूप से देहली के इतिहास पर आधारित एक रचना । यह तीनों स्रोत अपने अपने ढंग से मुगल काल का चित्रण करते हैं । अकबर महान ने इतिहास के महत्व को समझते हुए ही यह आदेश दिया था कि जो व्यक्ति भी उसके तथा पूर्वजों के वृतान्त लिखेगा उसे पूर्ण सुविधा दी जाऐगी । इसीलिए

अकबर के युग में इतिहास कृतियां बहुत रचित हुई उसके पश्चात भी यह प्रथा चलती रही जिस से इतिहासकारों का कार्य आसान हो गया । मुगल काल की लगभग सभी कृतियां फारसी भाषा में लिखी गई और इन पर फारसी इतिहास कारों का प्रभाव भी हैं । इन ऐतिहासिक स्रोतों में कुछ दरबार में लिखी गई कुछ निजी, कुछ गोपनीय (जैसे बदायूनी की मुनतखिबुत्तवशिख एवं खफी खां की मुनतखिबुल्लुबाव) तथा कुछ यात्रियों के वृतान्त अथवा यात्रा विवरण एवं पत्र संग्रह इत्यादि सभी सम्मिलित हैं । मलफूजात साहित्य अर्थात सन्तों की जीवनी में जनसाधारण के रहन सहन दुख–सुख का ज्ञान होता है । इस प्रकार सभी साहित्यिक कार्य भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि समाज का दर्पण है । अकबर ने ही सोच कर अनुवाद के लिए खोले गए विभाग में सभी प्रकार के धार्मिक, लौकिक, साहित्यिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत से फारसी तथा फारसी से संस्कृत में कराया था । जिसे उस के 'इतिहासकारों' ने पूर्ण रूप से प्रचुरता सहित प्रयोग किया तथा साहित्य और इतिहास में डाल दिया ।

14.2 तीनों स्त्रोतों का महत्व

'बाबरनामा' का रचयिता केवल साहित्यकार कवि तथा विद्वान ही नहीं, भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक था । इसलिए 'बाबरनामा' न केवल एक प्रत्यक्षदर्शी विवरण है बल्कि आवेष्ठित मानव का एक भावप्रवण प्रस्तुतिकरण है । यह अकेला स्रोत है जो 15वीं शताब्दी के अन्त में 19वीं शताब्दी के दो दशकों का बहुमूल्य वर्णन दे कर बाबर के दृष्टिकोणों तथा विश्लेषण के साथ–साथ अन्य भारतीय (राजपूत तथा अफगान) स्त्रोतों का संपूरक भी बनता है ।

अकबरनामा यद्यपि दरबारी इतिहास की श्रेणी में आता है पर उसमें अच्छे ऐतिहासिक ग्रंथ के सभी गुण पाए जाते हैं । अबुलफजल तथा उस का परिवार दरबार से जुड़ा था और आध्यात्मिक, धार्मिक, प्रशासकीय तथा आयोजन नियोजन सम्बन्धी सभी दायरों में शामिल था । अबुलफजल स्वयं भी अकबर का विश्वासपात्र सुयोग्य उपयुक्त था । यही कारण है कि बाबरनामा अन्य इतिहास ग्रन्थों के मुकाबले ज्यादा व्यापक, विस्तृत, यथा तथ्य, कालक्रमानुसार, बहुकोणीय पुस्तक हे । संशोधित होने के कारण इस में सुव्यवस्था, शब्दों का ज्ञानकृत चयन तथा सूचनाओं का भण्डार है ।

सुजनराय की खुलासतुत्तवशिख भारत में लिखी गई भारतीय द्वारा रचित पहली फारसी की पुस्तक है । जिससे भारतीय दृष्टि कोण का आभास होता है । दरबार से दूर लिखी गई यह पुस्तक देहली नरेशों के व्याख्यान के साथ–साथ भारत की भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक तथा अन्य पहलुओं का वर्णन देती है ।

14.3 बाबरनामा : बाबर के बौद्धिक जीवन पर प्रभाव – आनुवांशिक्ता तथा वातावरण का

बाबर का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जहां शिक्षा तथा विद्या सम्बन्धी योग्यतायें प्राथमिकता रखती थी । बाबर के नाना तथा दादी विशेषकर माता कुतलुक बाबर के चहुं ओर जिन प्रतिभाशाली लोगों का झुरमुट था और जिन्होंने उस के नन्हें मस्तिष्क पर अपने–अपने ढंग से प्रभाव डाला था वे उसके सगे–सम्बन्धी भी थे तथा अमीर भी । यूं तो

बाबर को अपने पूर्वजों अमीर तीमूर, उलुग बेग, यूनुस खां, त्रैसुकूंररमिज़ों इत्यादि की विचारणा एवं बुद्धि सम्पन्नता से भी कुछ दाय प्राप्त हुआ था । परन्तु विशेष रूप से 15वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में सुलतान हुसैन बैकरा अर्ब्दुरहमान जामी, अलीशेर नवाई, ख्वाजा उबदुल्ला अहरार इत्यादि ने मध्य एशिया में जो विद्वता का वातावरण बना रखा था उस ने बाबर की क्षमताओं को चमकाने में सहायता दी। बाबर को अपने वातावरण से उच्च दीक्षा, विचार व आर्दश प्रवीणता तथा कानून के प्रति आज्ञाकारिता प्रदान की जिस से उस की कला और भी निखर आई ।

14.4 बाबर की उपलब्धियां विद्वता के क्षेत्र में :

बाबर केवल विजेता, राजनीतिज्ञ एवं मुगल राज्य का संस्थापक ही नहीं बेजोड़ लेखक, कवि, विद्वान भी था । वह अरबी, फारसी तथा तुर्की भाषाओं का प्रखर था । उसने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें उसकी आत्मकथा, मुबच्चन, दीवान इत्यादि सम्मिलित हैं । काबुल विजय के पश्चात बाबर ने नस्ख के समान एक नवीन लेख कला का आविष्कार किया जिसे उसने "रक्ते बाबरी " खत्ते बाबरी का नाम दिया था ।

14.5 बाबर नामा :

बेविरिज ने बाबर नामा को पूर्ण रूप से एक 'अमूल्य ग्रंथ" बताया है जो "सेन्ट आगस्टाइन, रूसो, गिब्बन तथा न्यूटन की आत्मकथा के समान अनूठी, रोचक एवं भारत में तो क्या समस्त एशिया में अपने तौर की पहली पुस्तक है" । इलियट और डाउसन का विचार है कि 'बाबर नामा अपने महत्व के एतबार से तीमूर तथा जहांगीर की आत्मकथा से उत्तम, जेनोफीन के बराबर तथा सीज़र की टिप्पणी के कुछ ही कम है ।" लेनपूल का कथन है कि "यदि किसी एक एतिहासिक स्रोत का नाम पूछा जाए जिस पर पूर्ण रूप से अकेले बिना सत्यापन प्रमाणन के भरोसा किया जा सकता है तो वह है बाबर नामा । बाबर से पूर्व या उसके पश्चात् कोई आत्मकथा इतनी रोचक तथा विश्वसनीय नहीं हैं ।

अपनी आत्मकथा के प्रति बाबर का स्वयं विचार है कि जो कुछ उसमे लिखा गया है वह सत्य पर आधारित है । ओर यह कि उस ने प्रत्येक घटना उसी प्रकार लिखी व आंकी है जैसे कि वह घटी है । प्रत्येक मानव की बुराई अच्छाई थी उस ने इसी प्रकार आंकी है ।

बाबर ने अपनी आत्मकथा चगताई तुर्की में लिखी थी जिस का अनुवाद अकबर के आदेश पर अब्दुलरहीम खानखाना ने फारसी में किया और 1583 में अकबर को भेंट किया । यह अनुवाद अबुलफजल के प्रयोग के लिए तैयार हुआ था ऐसा कहा जाता है । बाबारनामा की तुर्की भाषा सारगर्भित, सुबद्ध, शब्दमितव्ययी है । शैली अत्यन्त सुगम एवं प्रचुर है । बाबरनामा तीन भागों में विभाजित हैं – मध्य एशिया, समरकन्द, फरगाना इत्यादि । काबुल तथा भारत । प्रथम भाग की शैली दूसरे ओर मुख्यत: तीसरे भाग की शैली से भिन्न है । ऐसा प्रतीत होता है. कि प्रथम भाग हम तक संशोधित पहुंचा है जबकि दूसरे तथा तीसरे भाग के संशोधन का बाबर के पास समय नहीं था । यही कारण है कि बाद की घटनायें एक मसौदे, या रूपरेखा के समान है जबकि प्रथम भाग अलंकृत शुद्ध तुर्की में सुन्दर छन्दों से सुसज्जित है । बाबर ने

अपनी आत्मकथा का क्या नाम रखा इस पर इतिहासकारों में मतभेद है । बाबर की आत्मकथा के लिए जो नाम प्रयोग में लाए जाते हैं वे हैं : बाबरनामा, वाकयाते बाबरी, तुजुके बाबरी ।

बाबरनामा की रचना की तिथि पर भी मत भेद है । कुछ इतिहासकारों का कथन है कि यह आत्मकथा विभिन्न समयों तथा तिथियों पर लिखी गई । दैनिकी के समान प्रतिदिन नहीं – कभी–कभी बहुत दिन के पश्चात् भी । वृतान्त को अचानक छोड़ दिये जाने या फिर प्रारंभ करने का कोई कारण नहीं दिया गया है । कमी किसी नाजुक स्थिति में वर्णन समाप्त हो गया है फिर अकस्मात ही पहले की घटनाओं के चक्र को पूरा किए बिना शुरू हो जाता है । यह भी विवादस्पद है कि बाबरनामा दैनिकी है या आत्मकथा का जीवन वृत्त संस्मरण या दोनों का सम्मिप्रण । बेवरीज़ ने इसे दोनों का समन्वय बताया है ।

बाबरनामा अन्तराल के कारण कुछ अधूरा सा लगता है । बाबर के 47 वर्ष सैंतालिस वर्ष दस महीने की अवधि (बाबर की जन्म तिथि फरवरी 14, 1483 से मृत्यु 26 दिसम्बर 1530 तक) में से केवल 18 वर्षों का ही विवरण उपलब्ध है इसमें भी विभिन्न स्थानों पर अन्तराल है । यह रिक्तियाँ पृष्ठों के खो जाने या नष्ट जो जाने के कारण विदित होती हैं क्योंकि अधूरे वाक्य तथा अपूर्ण व्याख्यान इसी प्रकार की हानि के द्योतक हैं । कहीं कहीं केवल कुछ पृष्ठ और कहीं कहीं 18 महीनों या 8 और 11 वर्षों का । इस के अतिरिक्त प्रारंभ में 12 वर्षों का और अन्त में 16 महीनों का वृतान्त नहीं मिलता । हो सकता है, कि बाबरनामा को यह हानि पहुंची हो हिसार में 1512 में उस के कैम्प की बरबादी के समय, अथवा 1529 में जब उस के पुस्तकालय की बरबादी के समय – या फिर हुमायूं के भारत से भागते समय या उसके ईरान वापसी के समय । इस रिक्ति, से इतिहासकारों को कठिनाई भी हुई हो पर बाबर के प्रति भी भ्रान्ति पूर्ण धारणायें बनने लगी । उदाहरण स्वरूप 714 से 825 की रिक्ति के प्रति यह सोचा गया कि बाबर ने शाह इस्माइल का आधिपत्य माना तथा सोने के सिने उस ईरान सम्राट के नाम से भी चलाए इसी अवधि में तो शायद जान बूझ कर मौन धारण कर लिया हो । परन्तु यह सन्धि तो कुछ ही दिन की थी । उससे पहले एवं उस के बाद भी जब बाबर के उत्थान का समय था ऐसे अन्तराल क्यों हैं । इसी प्रकार बाबर तथा आलमखां के सम्बन्धों के लिए यह समझना कि बाबर आलम खां की चाटुकारी कर रहा था सही नहीं । फिर भी बाबर नामा के कुछ विलोपन खलते अवश्य है जैसे यूनुस खां तथा ख्वाजा उबैदुल्ला अहरार की जीवनी तथा मृत्यु के प्रति उदासीनता, स्वयं अपने जीवन के मुख्य वर्षों पर कुछ न लिखना विशेष कर प्रारंभ के 12 सालों पर चुप्पी साध लेना इत्यादि ।

14.6 बाबरनामा – एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में

'बाबरनामा' एक विजेता का संस्मरण है इसकी ऐतिहासिक महत्ता इसलिए और बढ़ जाती है । बाबर ने अपनी आत्मकथा में भारत का जो रोचक विवरण दिया है और जिस प्रकार भारत का नक्शा खींचा है वह स्वयं में एक वृत्त चित्र है । बाबर का अपना चरित्र, रोमान्टिक तथा पेचीदा था वह एक ही समय में सिपाही, शिकारी राजनीतिज्ञ दार्शनिक, कवि, लेखक, मानव को पहचानने समझने वाला सभ्य, सौम्य परन्तु जिज्ञासु प्रवृत्ति का मानव दृष्टिगोचर होता है । उसने अपने विचारों, भावनाओं, संसार तथा लोगों के प्रति अपनी धारणाओं का शक्तिशाली

चित्रण किया है । उसकी आत्मकथा के दर्पण में उस के व्यक्तिगत प्रभावों का विश्लेषण तो होता ही है साथ में भारत का प्राकृतिक सौन्दर्य, जीव जन्तु वनस्पति, इमारतों उद्यानों नरेश तथा उनकी दुर्बलताओं भारत के विभिन्न आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं पर भी रोशनी पड़ती है ।

प्राकृतिक सौन्दर्य का पुजारी बाबर जिन स्थानों से गुज़रा वहां के दृश्य का चित्रण उस ने बाबरनामा में अंकित कर डाला । लड़ाईयों के मध्य भी वह भारत के प्राकृतिक लुभावने द्रश्य का आन्नद लेता । ऐसे ही समय पर उसने लिखा कि "मैंने भारत में 32 प्रकार के लाला देखें हैं ।'' बाबर को जब जहर दिया गया था और मुजरिमों को सजा दी जा रही थी क्योंकि बाबर पर जहर का असर हो चला था, ऐसे संकट के समय भी बाबर बाग में जाकर पत्तियों की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए लिखता है "कैसा भी दक्ष चित्रकार क्यों न हो उतना कला पूर्ण चित्रण नहीं कर सकता" । बाबर बागवानी का शौकीन था । उस के वृतान्त में प्राणि समूहके साथ साथ वनस्पति पेड फल फूल पौधे सभी जीव जन्तुओं का आकर्षक चित्रणा मिलता है । भारत की बरखा ऋतु बाबर को प्रिय थी यद्यपि नमी से उस के तीन जरा बुक्तर, कपड़े फरनीचर सभी बेकार से हो जाते फिर भी सुगन्धित, सोहवना सोधा वातावरण बाबर को मोह लेता । आधी के झझडू गर्मी की लू धूप सभी का विवरण मिलता है । आर्य लोगों के समान उसने भी भारतवासियों को सुन्दर नहीं बताया । चूंकि एक भी मनुष्य बाबर तथा उसके साथियों को खाद्य सामग्री तथा चारा देने को तैयार न थे । बाबर ने उन्हें अमैत्रीपूर्ण व्यवहार का दोषी बताया कि उन में लिबास विशेषकर धोती, लंगोटी, डेवटी (चिराग, दिया) सभी कुछ बाबर के लिए नए थे । यद्यपि वह लिखता है कि भारत में सोने, चांदी का अभाव नहीं यह एक समृद्ध देश है पर यहां उसे अच्छे घोड़ों, बाजारी, नान–रोटी, अंगूरों, सदी अन्य फलों, ठण्डे बर्फ के पानी, हमाम, मोमबती सभी का अभाव नजर आया । बाबर भारत तथा मध्य एशिया के बीच की साँस्कृतिक व रहन सहन की विभिन्नताओं से परेशान मालूम होता है । बाबर भारत तथा अपने देश की तुलना करते करते कमी कभी गृह विरह की स्थिति में आ जाता है फिर भी कहीं– कहीं उस की आलोचना गृह विरह का परिणाम नहीं मालूम होती । बाबर को भारत की जातिप्रथा, व्यावसायिक गतिशीलता– का अभाव ऐसे नये अद्भुत लक्षण लगे कि उस ने आश्चर्य व्यक्त किया है । इसी प्रकार भारत की विजय के संदर्भ में इब्राहीम लोदी की सेना की त्रुटियां भारतीय राजाओं के पारस्परिक द्वन्द्व, लोदी राजा की कंजूसी जिस ने सेना को अप्रसन्न कर दिया, तुलुगमा पद्धति इत्यादि सभी का विस्तार से विवरण दिया है । जिन नरेशों ने पत्र लिखा था उसे भारत आने की स्वयं दावत दी उसका भी उल्लेख मिलत है । बाबर ने भारत के कारीगरों को बहुतायत तथा वंशानुगत होने का भी जिक्र किया है । पर वह उन्हें मध्य एशिया के कारीगरों से कम निपुण बताता है शायद इस लिए कि कारीगरी के नमूने उन स्थानों पर नहीं थे जहां बाबर गया । इसी प्रकार बार्बर ने अच्छे झरने व आबशार भारत में नदेखे और भारत में उनके न पाए जाने का जिक्र किया है । बाबर ने गुणदोष सभी का वर्णन इमानदारी से कर दिया है । बाबर की शराब के प्रति अरूचि तथा अपने भाईयों के हाथों उस का शराब पीना, पत्नी के प्रति उस की भावना, सौतेली मां के दुर्व्यवहार पर अपने सदाचार से उसे लज्जित

करना । सगे सम्बन्धियों के लिए उस की उदारता – सभी मानवीय पारस्परिक संबंधों पर अच्छी टिप्पणी है । बाबरनामा लरजा देने वाली घटनाओं से परिपूर्ण है । जो अल्फ लैला के समान रोमांचकारी बना देती है जैसे बाबर का भेस बदल कर अपनी बहन खानजादा से मिलने जाना जो उसे के शत्रु शैबानी के साथ थी । इसी प्रकार बाबर अपने शत्रुओं के हाथ पड़ जाने पर खामोशी से सोता बना उन की स्वयं को हत्या की प्लान बनाते सुनता रहा । अन्ततः उसने पूछा कौन है जो उस पर पहले आक्रमण करेगा?

बाबर के व्यक्तिगत गुणों उसकी नेतृत्व की योग्यता, सहनशीलता सौहाद्र, अपार साहस, धैर्य, तथा अनुशासन शामिल थे । 'इसका प्रदर्शन भली भांति आत्मकथा से होता है । ऐतिहासिक एतबार से यह आत्मकथा बहुत महत्वपूर्ण है मुख्यतः इस लिए भी कि यह तारीखेरशीदी के अतिरिक्त इस समय का अकेला स्रोत मुगलों द्वारा व मुगलों के विषय में है ।

14.7 अकबरनामा

14.7 अबुलफजल की जीवनी – अकबरनामा के लेखक अबुलफजल का जन्म 14 जनवरी 1551 को आगरा में हुआ । उस के पिता शेख मुबारक तथा भाई फैजी अपनी बहुमुखी प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध है । अबुलफजल ने उन दोनों से अधिक ख्याति प्राप्त की । यद्यपि अबुलफजल ने कोई बड़ा मनसब नहीं प्राप्त किया पर उसकी व्यक्तिगत विशिष्टता ने उसे अकबर के दरबार का मुख्य आकर्षण बना रखा था । बदायुनी के साथ–साथ अबुलफजल बीसती (20) का मनसब प्राप्त कर दरबार में दाखित हुआ । वर्ष 1585 में उसे एक हजार का 1593 में दो हजार का तथा 1602 में उसे 5 हजार का मनसबदार बनाया बया परन्तु उसकी राजनैतिक महिमा इस से कई गुना थी । उलमा वर्ग अबुलफजल, शेख मुबारक एवं फैजी की प्रति उनके महदवी एवं प्रबुद्ध विचारों के कारण कुछ वैमनस्य रखता था ऐसा बताया जाता है । यह शीत युद्ध बहुत दिन चलता रहा । अबुलफजल एक महान विद्वान होने के अतिरिक्त राजनेता भी था । दक्षिण में उसकी राजनैतिक विदग्धता तथा कुशाग्रता का आभास भली भांति को जाता है । अकबर अबुलफजल का कद्रदान था । जब अकबर तथा सलीम के बीच भ्रम तथा अनबन हुई और अबुलफजल को इस का दोशी ठहराकर सलीम की इच्छा पर बीर सिंह बुन्देला द्वारा उस का बद्ध कराया गया तो अकबर फूट–फूट कर रोया और कहा कि "सलीम स्वयं मुझे मार देता तो अच्छा था कि अबुलफजल बच तो जाता" । अबुलफजल का देहान्त 12 अगस्त 1602 को सराय बार में जख्मी होने के बाद तुरन्त ही हो गया । अबुलफजल को अकबर का जानाथन बताया गया और सभी धार्मिक तजरबों में अबुलफजल और उसके कुटुम्ब का जिम्मेवार बताया गया है ।

14.8 अबुलफज़ल की कृतियां –

वैसे तो अबुलफजल ने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं परन्तु उसकी ख्याति का आधार और क्षमता का सही प्रमाण उसकी पुस्तक अकबरनामा तथा आईने अकबरी से प्राप्त हो जाता है । अकबरनामा का प्रथम भाग तो अकबर के पूर्वजों के हुमायू तक तथा दूसरा भाग अकबर के राज्य के 46वीं वर्षगांठ तक तेथिक क्रम में लिखा गया है । अकबरनामा की रचना 1592 में

प्रारंभ कर ली गई थी । परन्तु पांचवें संशोधन के पश्चात् 1602 में सम्पन्न हुआ । यद्यपि अबुलफजल की असामयिक व आकस्मिक मृत्यु के कारण यह कार्य अधूरा छोड़ गया था पर इसे 'तकमीले अकबरनामा'' ने किसी हद तक पूरा कर दिया । इनायतल्ला हेब्बे अली ने लिखा था आईने अकबरी को अकबरनामा का तीसरा भाग बताया जाता है । अबुलफजल का इरादा अकबरनामा को 5 भागों में लिखने का था पर यह न हो सका । अकबरनामा दरबारी इतिहास की श्रेणी में भले ही आता हो पर उस को ऐतिहासिक वैभव को नकारा नहीं जा सकता । अकबर कालीन इतिहास का इतना भरपूर, संपूर्ण, विस्तृत तथा कालक्रमानुसार एवं विश्वसनीय वृतान्त कहीं और नहीं मिलता ।

बेविरिज का क धान कि अकबरनामा में केवल चाटुकारी है सही नहीं । यद्यपि अबुलफजल की लेखनी अकबर की श्रद्धा से ओत प्रोत है इससे इनकार नहीं पर अबुलफ़ज़ल के अपने परिसमिन थी थे स्वयं अपने – अपनी स्थिति के क्योंकि वह अकबर क प्रिय दरवारी ही नहीं अन्तर ग मित्र, विश्वासपात्र, राजनैतिकत था आध्यात्मिक परीक्षण का भागीदर भी था अबुलफजल ने अकबर को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में देखा व अकबर नामा में दर्शाया हो या नहीं पर अकबर को एक आदर्श मानव, श्रेष्ठतम आत्मा के रूप में अंकित अवश्य किया है जो व थार्थता पर आधारित है । अबुलफ़ूज़ल खफी खां तथा फरिशता के समान वस्तुगत निष्पेक्षता के लिए नहीं सराहा जाता पर अन्ध भक्ति तथा – पक्षपात का आरोप भी उस पर नहीं लगाया जा सकता ।

कुछ इतिहासकार यह भी कहते हैं कि अबुलफजल द्वारा अकबर की प्रशंसा तो समझ में आती है पर कहीं कहीं वह ऐसी घटनाओं का जिन से अकबर पर आंच आती हो उल्लेख ही नहीं करता जैसे जागीर भूमि को खालसा में बदलना, करोडियों का परेशान किया जाना, या 24 वें प्रशासनीय काल में जागीर का दोबारा शुरू किया जाना जब कि इन सूचनाओं की व यथार्थता तथा तफसील हमें बदायोनी, विज़ामुद्दीन तथा टोडरमल एवं फतेहल्ला शीराजी की रिपोर्ट से भी मिल जोती है । इसी प्रकार सद्र के विभाग में किए गये सुधार अकबरनामें में नहीं मिलते परन्तु आईने अकबरी में हैं । इसी प्रकार इबादत खान के वाद–विवाद स्वयं को मजतहिद एवं इमाये इादिल बताने वाला महजर, तौहीदे, इलाही इत्यादि पर इत्तेला अकबरनामा में नहीं बल्कि बदायूनी में मिलती है । शेरशाह की उपलब्धियों का वर्णन भी निष्पक्ष नहीं । इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक है कि भूमिगत या राजस्व सम्बन्धी सुधारों का अच्छा ब्योरा अबुलफ़ज़ल द्वारा दिया गया है । ''धार्मिक क्षेत्र में अकबर की '' सत्य की खोज '' का परीक्षण भी अकबरनामा में दिया गया है ।

अकबर से पूर्व कई तीमूरी नरेश स्वयं खुतबा पड़ कर और स्वयं को दैवी शक्ति का खजाना बताकर मध्य एशिया में यह महत्व प्राप्त करने की चेष्टा कर चुके थे । यह भी कहा जाता है कि अकबरनामा ही था आईने अकबरी दोनों ही अकबर के राज्यकाल से जुडी पुस्तकें हैं साधारण जनता से नहीं । आईने अकबरी में यद्यपि स भी प्रकार की आर्थिक, सामाजिक स्थिति का दिग्दर्शन है पर साधारण मनुष्य के जीवन तथा उसके संसाधनों, मजदूर को मजदूरी कीमतों का उतार चढ़ाव कही नहीं मिलता । यह सभी एतराज इस लिए निराधार है कि म

मध्यकालीन इतिहास में जनतावादी इतिहास तथा जनसाधारण के दुखों के प्रति उदासीनता सार्वभौमिक व समापर्वतक हैं । फिर भी आईने अकबरी संसार में अनोखी ऐतिहासिक धरोहर इसलिये है कि उस में लगभग सभी प्रकार की सूचनायें मिल जाती है । ब्लाकमैन का कथन है कि अबुलफजल की कृतियों में सबसे अधिक अच्छाई है उन के विषय तत्व की शुद्धता। कहीं भी स्त्रियों का अनादरपूर्ण प्रसंग में जिक्र न होगा न ही उसकी पुस्तकों में अनैतिकता या व्यभिचार के प्रति उदासीनता नहीं मिलती । सत्य के प्रति उस का प्रेम उदासीनता नहीं मिलती। सत्य के प्रति उसका प्रेम एवं उसके जज़बात की श्रेष्ठता भी उसकी कृतियों में दृष्टिगोचर होती हैं । हफ्त इकलीम में लिखा है कि अबुलफजल लेखक के रूप में अनुपम था । उस का स्टाइल शानदार तथा अन्य मनुष्यों की तुच्छ बनावट तथा तकनीकी पेचदिगी से मुक्त था । उस के शब्दों की शक्ति, वाक्यों का सुसंगठन, गठजोड़ तथा शब्दों का चयन ऐसा था कि कोई उस की नकल नहीं कर सकता । अब्दुल्ला खां उजबेक (जो बुखारी का नरेश था और अकबर का समकालीन) सदैव यह कहता था कि "वह अकबर की तलवार से ज्यादा अबुजफूज़ल के कलम से भयभीत रहता है । "

अकबरनामा की प्रथम जिल्द में तीमूर बाबर सूर राजाओं तथा हमायूं के इतिहास के दूसरे में 'अकबर के 46 वर्षों का वृतन्त है । तीसरी जिल्द आईने अकबरी है जिस को इतिहास की पुस्तक पूर्णरूप से भले ही न कहा जाए पर उसमें गजेटियर के समान सभी रिपोर्ट मौजूद हैं। ब्लाकमैन ने सम्राटों के प्रति चाटूकारी, दरबारी इतिहास का ढर्रा बताते हुए अबुलफजल को इस इज़ाम से इस लिये मुक्त करता है कि अबुलफजल के सच में अकबर के समान एक हीरो मिला था जिसकी प्रशंसा न करना गलत होता । अकबरनामा में अबुलफजल ने बहुत से ऐसे किस्से शामिल किये हैं जिसमें अकबर दैवी शक्ति के साथ–साथ एक महापुरूष मालूम होता है ।

वैसे तो अबुलफजल की पुस्तकों में अयारे दानिश जामे उल लुगात (कोश कला पर) भी है तथा कशकोल भी । उस ने तारीख अलफी में भी मदद की थी । अन्य पुस्तकों में विभिन्न रूप से उस का सहयोग बताया जाता है, परन्तु अकबरनामा तथा उस की तीसरी जिल्द आईन अत्यन्त महत्वपूर्ण बताई जाती है ।

अकबरनामा की तीसरी जिल्द आईने अकबरी का समापन 'अकबर के 42वें शासकीय वर्ष में हो गया था कुछ ही अंश 43वें साल में हुए, क्योंकि बिरार की विजय (1586–7) में हुई। जबकि इतिहास में सदैव ही मिलिट्री बुलेटिन के समान युद्ध की, बदलते खानदानों गिरते उठते भाग्य की तसवीर रहती है, आईने में कुछ दूसरा रंग है । आईने में राजाओं तथा हकुमत करने वाले समस्त वर्ग को जैसे जनसाधारण के पास ला खड़ा किया गया हो जो नाट्य कला के चरित्रों के समान आंखों के सामने कार्यान्वित नज़र आते हैं । केवल रंग बिरंगी सूचनायें ही आईने को अहम नहीं बनाती बल्कि उस की प्रामाणिकता उसकी यथा तथ्यता । अबुलफजल इतने मुख्य पद पर आसीन था कि सभी प्रकार के अभिलेखों तक उसकी पहुंच थी । दरबार के हर छोटे बड़े विभागों तथा उनकी कार्यवाही से जानकारी रखता था वह आईने अकबरी को अबुलफजल ने 5 भागों में बांटा है जिसमें प्रथम भाग अकबर के साम्राज्य के विभिन्न भागों, विभागों, शाहीमहल, दकशाला खाद्य तथा अन्य सामग्री, चित्रकारी, आयुधशाला, सुलेखन, इमारतों की सामग्री, मजदूरों की मजदूरी की दर इत्यादि पर, दूसरा भाग मनसबदार तथा

मनसबदारों पर, तीसरा भाग फौजदार कोतवाल इत्यादि तथा राजस्व नीति, दुहसाला बन्दोबस्त, चौथा भाग हिन्दुओं की सभ्यता, दर्शन, खगोल विज्ञान, दवाईयों, तथा पांचवां भाग अकबर के कथनों, उक्तियों तथा अकबर के दरबार के विशेष लोगों की जीवनियों पर आधारित है । आईने में मुगलाई खानों पर भी एक अलग भाग है ।

अबुलफजल की आईने अकबरी अपने तौर की प्रथम पुस्तक है जिसमें लेखक ने प्रशासन सम्बन्धी सभी ब्योरे तफसील से दिये हैं । भारत की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सम्पत्ति, जनसंख्या धार्मिक तथा दार्शनिक वृतान्त, प्रत्येक मुगल प्रान्त का स्थान विवरणिका, मनसबदारी, मालगुजारी, करों की दर, सरकारी अनुसन्धान, आदेश, भारतीय विभिन्न त्योहार, नहान, हिन्दू दर्शन शास्त्र, सामाजिक प्रथा, आचार विचार सभी पर अलबरूनी से अच्छा ब्योरा प्रदान किया है । इस प्रकार उसकी ऐतिहासिक क्षेत्र की व्याप्ति कहीं अधिक थी । आईने में अकबर के समय के सभी गणमान्य व्यक्तियों, कलाकारों चित्रकारों, सन्तों, साधुओं का उल्लेख भी है । कवियों की जीवनी भी । इस प्रकार आईने अकबरी अकबर के समय में रचित वह ग्रन्थ है जिस में प्रत्येक पहलू पर पूर्ण रूप से सूचना मिलती है ।

अबुजफज़ल की तीसरी कृति उसके लिखे हुए पत्रों का संकलन " इन्शाए अबुलफजल " है जिस का प्रथम भाग अकबर के नाम से लिखे गए (इरान तूरान, काशगर के राजाओं अथवा अन्य महत्वपूर्ण समकालीन लोगों को) तथा द्वितीय भाग अबुलफजल द्वारा (विभिन्न पत्र, अकबर व शहजादों, अमीरों के नाम) लिखे गए तथा तीसरा भाग अबुलफजल की गद्य लिखने की क्षमता को दर्शाता है । इसमें विभिन्न पुस्तकों की भूमिका इत्यादि है । प्रथम दो भाग तो ऐतिहासिक सूचना की खान है ।

14.9 अबुलफजल इतिहासकार के रूप में

मुगल कालीन इतिहासकारों में अबुलफजल की कृतियाँ अपने बौद्धिक मूलतत्व, विवेकशीलता, राजनैतिक व प्रबंधात्मक वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए अपनायी गयी शैली तथा युक्तियुक्त दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध है । अबुलफजल की भाषा फारसी है । अलंकृत शब्द बहल तथा अरबी तुर्की शब्दों से सुसज्जित । वह बरनी तथा बदायोनी के समान अत्यंत स्वानुभूतिमूलक है पर उनके समान अबुलफजल अपने समय की अंतारत्मा में नहीं उलझ जाता । अबुलफजल पहला भारतीय इतिहासकार है जिसने घिसे पिटे इतिहास लेखन को तजकर इतिहास के प्रति लौकिक तथा बुद्धि संपन्न व्यक्तिक शैली धारण की । उसने इतिहास को धर्मतत्वज्ञ से नहीं ' दर्शनशास्त्र से जोड़ा । उसके लिए लड़ाईयाँ धार्मिक रंग में रंगकर नहीं उभरती बल्कि वह विनाशकारी तत्वों तथा स्थायित्व की शक्तियों के बीच की रस्साकशी या द्वन्द्व रहता है । अबुलफजल ने ऐतिहासिक क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर दिया तथा उसे राजनैतिक लडाइयों की नीरसता तक सीमित न रखकर सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक, राजनैतिक, दर्शनात्मक, प्रशासनीय सभी प्रकार की जानकारी अबुलफजल ने दी है परन्तु खोजबीन, शोधात्मक अनुसन्धान के पश्चात । यद्यपि कहीं –कहीं अबुलफजल ने भी सामान्यानुमान का प्रयोग किया है पर वह भी सत्य पर आधारित है । अबुलफजल ने इतिहास लेखन के प्रति अपने विचार अकबरनामा के दूसरे भाग में व्यक्त किए हैं कि इतिहास को

मिथकशास्त्र बनाने के बजाए विवेचनात्मक बुद्धि सम्पन्न तथा लौकिक रूप से ही आकना व दर्शाना चाहिए' उस का अकबरनामा इसीलिए एक विश्वसनीय प्रामाणिक शोध ग्रंथ है । उसने इतिहास को घटनाओं का क्रमचक्र समझा है पर उस में नीति शक्ति भी ढूँढी है ।

अबुलफजल कभी एक या दो ग्रंथो पर ही अपने निष्कर्ष नहीं निकालता था । उसने स्वयं कुछ प्रश्न तैयार कर रक्को थे जिन पर वह प्रत्येक सूचना की यर्थाता को आंकता था । उसने सभी प्रकार के ऐतिहासिक साधनों स्रोतों का प्रयोग किया था । रिर्पोट, फरमान, निशान कार्यवृत्त पुस्तकें स्मारपत्र, प्रलेख, विचरण पत्र, वाकिया नवीस द्वारा लिखे अभिलेखन सभी को उसने पड़ा, जांचा, तुलनात्मक अध्ययन किया तथा तर्कसंगत विश्लेषण किया । इसीलिए उसकी पुस्तकों में संबद्धता चरम सीमा पर मिलती है । अकबर के राज्य के 19वें वर्ष एक अभिलेखागार प्रारम्भ हुआ जहां सभी घटनाओं का लेखा तैयार किया जाता । यह तथा सभी आवेदन पत्र, इक्ता के आर्डरों की छान–बीन कर के सूक्ष्मता व यथा तथ्य से उन का प्रयोग करने में ही अबुलफजल की दक्षता व विशिष्टता जानी जाती है । अबुलफजल ने मनुस्मृति, साहित्य दर्पण इत्यादि जैसे हिन्दी स्रोतों को भी पड़ा था । उसने पुराने दरबारियों, शाही खानदान के लोगों तथा महल के अन्य लोगों से पूछताछ द्वारा भी सूचनाएँ एकत्रित की हैं । यद्यपि उस पर यह आरोप है कि उसने अपने सूचना के साधनों का कभी भी जिक्र नहीं किया पर ऊसूले इसनाद फारसी इतिहासकारों में उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना अरबी में ।

अबुलफजल के धार्मिक विचार एक रहस्यमय पहली बने रहे । कुछ लोग (जैसे खाने आज़म अथवा जहांगीर) उसे इस्लाम का सही अनुयायी नहीं मानते थे कुछ ने उसे हिन्दू कुछ ने नास्तिक, नुकतावी या कुछ और बताया, शहनवाज खां के विचार से वह एक सर्वधर्मसम्भाव एवं वसुन्धरा कुटुम्बम का स्वतंत्र आत्मा स्वरूप था । यही अबुलफजल ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है या नहीं आभास अवश्य ऐसा ही दिया है । उसकी लिखी हुई मुनाजात' जो उसके अपने धार्मिक विचारों का आईना है उसे एकेश्वरवादी पर सत्य की खोजी आत्मा दर्शाती है । इसमें अबुलफज़ल का परम्पराओं एवं बाह्य आडम्बरों का विरोध, तथा विवेकशीलता की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है । वह सन्तों तथा धर्मात्मा व आध्यात्मिक गुरूवरों के प्रति भक्ति भावना वाद–विवाद धार्मिक पृष्ठभूमि पर केवल इसलिए था कि वे एक दूसरे के प्रति भ्रमग्रस्त थे क्योंकि वे पूर्ण रूप से एक दूसरे की भाषा धर्म परम्पराओं से अवगत न थे । अबुलफजल की उदार–वादिता तथा धर्मनिर्पेक्षता पूर्ण रूप से उस की कृतियों में झलकता है ।

खुलासतुत्तवशिख

14.10 लेखक खुलासतुत्वशिख के सुजन राय

यद्यपि अधिकतर प्रतिलिपियों में खुलासतुत्तवशिख के लेखक के विषय में कोई सूचना तो क्या उसका नाम भी नहीं मिलता परन्तु जफर हसन द्वारा प्रयोग किए पांच नुस्खों से एक नुस्खा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । औरंगजेब के समय में लिखी गई यह पुस्तक औरंगजेब के राज्यारोहण तथा शाहशुजा एवं दारा शिकोह का पीछा करने तक की घटनाओं को देती है तथा दारा के थट्टा से गुजरात जाने तक के वाकये के पश्चात् अकस्मात ही औरंगजेब की मृत्यु पर टिप्पणी है । डाऊसन के अनुसार यह किसी मुंशी ने किताब नकल करते समय बढ़ा दिया था

और तत्पश्चात् सभी लिपियों में यह मिलता है । परन्तु फिर भी लेखक का नाम कहीं नहीं मिलता । पुस्तक के मजमून तथा विस्तृत भूमिका (जो लेखक द्वारा ही लिखित है) में भी यद्यपि, पुस्तक की रचना की तिथि नाम का कारण एवं अन्य सभी आवश्यक सूचनायें हैं परन्तु लेखक का नाम नहीं है । केवल कुछ ही प्रतिलिपियों में कातिब द्वारा लिखा नाम मिलता है, उदाहरणतया 26 शाबान इतवार 10200 हिजरी में अकबर शाह पुत्र शाह आलम गाजी महाराजधिराज राज राजेन्द्र श्री स्वामी जगत सिंह बहादुर के काल में सवाई जयपुर नामी बलवे में लिखी गई पुस्तक खुलासतुत्तवशिख में कातिब ने लेखक का नाम मुन्शीउलमनाशी (मुनशियों के मुन्शी) सुजन राय भण्डारी साकिन बटाल सूबा पंजाब दिया है । डाऊसन ने इस नाम को सुव्हान राय तथा बठाला को पटियाला पढ़ा है । परन्तु जफर हसन की शोधोपरान्त यह सिद्ध हो गया है कि लेखक का नाम सुजन राय भण्डारी है जो बटाला का रहने वाला था । चूंकि भूमिका में हिन्दी सन भी है इससे विदित होता है कि किताब किसी हिन्दू ने ही लिखी है । अपने प्रति लेख ने खुलासतुत्तवशिख में केवल इतना ही लिखा है कि जब से उसने होश सम्भाला बड़ा समझदार हुआ वह सदैव ही नाज़िमा की सेवा में रहा । उसके नाम के साथ शायद मुंशी इसीलिए जुड़ा है । सुजन राय ने अपना नाम क्यों छिपा कर रखा और रिवाज के अनुसार भूमिका में क्यों नहीं अपना नाम दिया इस संदर्भ में जफर हसन का कथन है कि सुजन राय चूंकि एक अत्यंत साधारण व्यक्ति था और इसीलिए वह यह जानता था कि उसकी रचना का कोई महत्व न होगा उसके अपने नाम लिखने से रचना द्वारा उसका ध्येय धनोपार्जन, इनाम की लालसा तथा प्रसिद्धि का प्रलोभन भी नहीं था । एक सच्चे इतिहासकार के समान वह केवल यथार्थवादी, सत्य पर आधारित ऐतिहासिक वास्तविकताओं से परिपूर्ण एक पुस्तक लिखना चाहता था । जब हम इस दृष्टिकोण से उस की रचना को देखते हैं तो आभास होता है कि शायद उसकी रचना सभी प्रकार की अतिश्योक्ति तथा अतिरंजन से पवित्र विशुद्ध यथार्थता पर आधारित होगी मुख्यत: औरंगजेब के विवरण में तो वह सभी घटनाओं का स्वयं साक्षी है तथा आंखों देखा हाल प्रस्तुत कर रहा है । अपनी पुस्तक में सुजन राय लिखता है कि यद्यपि उसने कई ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन किया है परन्तु उसने कहीं से भी कुछ चोरी नहीं किया सभी कुछ स्वयं ही लिखा है । सुजन राय हिन्दी, संस्कृत तथा फारसी का विद्वान था ऐसा बताया जाता है ।

14.11 खुलासतुत्तबशिख एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में

खुलासतुत्तवशिख औरंगजेब के चालीसवें शासकीय वर्ष में अर्थात् 169म5–96 (1207 हिजरी) में लिखी गई । यह वैसे तो विशेषतय: दिल्ली नरेशों के विस्तृत विवरण पर आधारित है और युधिष्ठिर से लेकर (दिल्ली स्थापित हुई थी) औरंगजेब के समय तक सभी देहली सम्राटों का उल्लेख करती है पर इस में ऐसे समस्त राज्यों का भी वृतांत संक्षिप्त रूप में मिलता है जिन्हें दिल्ली राजाओं ने विजय किया या विलय किया । यह पुस्तक शुद्ध तथा सजीव फारसी शैली में लिखी गई तथा उचित छन्दों से सुसज्जीत है । लेखक ने इस पर संशोधन परिशोधन में ही दो वर्ष लगाए ऐसा बताया जाता है । पुस्तक का विभाजन स्थिति तथा परिस्थिति के अनुसार तीन भागों में किया गया है । प्रथम भाग भारत की औरंगजेब के समय की भौगोलिक

स्थिति पर दूसरा भाग पांडवों के इतिहास से लेकर पृथ्वी राज राय पिथौरा तक तीसरा भाग नसिरूद्दीन सुबुकतगीन से लेकर औरंगजेब के समय तक के इतिहास पर समाविष्ट है ।

प्रथम भाग विशेषकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें न केवल भौगोलिक स्थिति, भारत की पैदावार, नागरिक वर्ग की दशा पर मूल्यवान सूचनायें उपलब्ध है बल्कि 18 मुगल प्रान्तों (जो मुगल राज्य में सम्मिलित थे) में प्रत्येक का अलग विस्तृत वर्णन है । उन के विभिन्न नगरों, रोचक स्थानों, इमारतों, दरियाओं, सरकारों, महलों, मालगुजारी, सफर के लिए रास्तों तथा विभिन्न सुन्द भव्य स्थलों का भी पूर्ण विवरण है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह आईने अकबरी का एक नीवनतम संस्करण है । इसमें बहुत सी नई सूचनायें हैं तथा विस्तृत जानकारी मिलती है । विशेषकर पंजाब की भौगोलिक स्थिति, लाहौर प्रान्त और उसमें लेखक के वतन बटाला के प्रति अत्यन्त महत्वपूर्ण विवरण मिलता है क्यों कि उस में लेखक की व्यक्तिगत जानकारी झलकती है ।

द्वितीय विस्तृत भाग भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इस में देहली नरेशों भारतीय सम्राटों के संक्षिप्त हालात हैं । शायद यह फारसी की प्रथम पुस्तक है जो प्राचीन भारत के इतिहास पर प्रकाश डालती है । इतिहासकारों के अनुसार यद्यपि यह ग्रन्थ केवल 'किस्सा कहानी' समान है पर उस से इस के अकेले फारसी के स्रोत होने की महिमा कम नहीं होती ।

तृतीय भाग भी कम रोचक नहीं है । यद्यपि इस के अधिकतर वाकियात अन्य पुस्तकों व ऐतिहासिक ग्रंथों पर आधारित हैं । और उन्हीं से निगमित हैं । इन पुस्तक स्त्रोतों की लिस्ट लेखक ने अपने ग्रन्थ में दी है यह 22 हैं । इसमें अकबर नामा, आईने–इकबाल नामा मासिरूलउमरा, मुनतखिबत्तवशिख, मुनतखिबुल्लबाब, आलमगीर नामा जफर नामा इत्यादि अंकित हैं । फिर भी इस ग्रंथ में बहुत सी नई इत्तला है जिससे उपलब्ध इत्तला सम्पूर्ण होती है ।

ईश्वर की प्रशंसा के साथ प्रारंभ कर लेखक ने सर्वप्रथम अपनी रचना को खुलासतुत्तवशिख नाम क्यों दिया इस पर टिप्पणी है । लेखक अमूल्य जीवन के महत्व को समझने तथा उससे विद्वता प्राप्त करने में व्यतीत करने का आह्वान करते हुए पुस्तकों के लेखन तथा उन के पढ़ने, लाभ उठाने पर जोर देता है । वह स्वयं चूंकि ऐसा पेशा पत्र लिखने का या मुंशीगीरी का करता था जिसके कारण यह आवश्यक हो गया कि वह ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढ़ें । अतएव उसने रज्मनाम (जो महाभारत का अनुवाद है तथा अकबर के आदेशानुसार बदायोनी तथा थानेश्वरी द्वारा तैयार हुआ था), रामायण भागवत गीता, योग विशिष्ट (जो दारा के आदेशानुसार अनुवादित है), सिंहासन बत्तीसी, पदमावत इत्यादि पढ़ा । तारीखे कशमीर तथा तारीखे बहादुरशाही का भी अध्ययन किया । इसी लिए एक ऐतिहासिक खाका उस के मस्तिष्क में तैयार हो गया थोड़ा – थोड़ा सभी सम्राटों के प्रति उसने लिखा । चूंकि इस पुस्तक में रामायण से लेकर तारीखे बहादुरशाही तक का प्रयोग व अध्ययन करके इस ग्रन्थ में औरंगजेब के काल तक के विभिन्न सम्राटों का संक्षिप्त व्याख्यान (खुलासा) है इसी लिए इस का नाम खुलासतुत्तवशिख रखा । अर्थात् इतिहास का खुलासा भारत की प्रशंसा पर एक विभाग है जिस में वनस्पति, मौसम, खेती, गल्ला, फल–फूल के अतिरिक्त जानवरों पर विभिन्न शास्त्रों (जैसे

सांख्य शास्त्र, वेदान्त शास्त्र, कर्म भाग, मीमांसा इत्यादि) व्याकरण वैदिक विद्या, शगुन विद्या, इन्द्रजाल, ज्योतिष विद्धा, गान्धर्व विद्या सभी पर टिप्पणी हैं । भारत के दरवेशों, सन्यासी, योगी, बैरागी, गुरू नानक के अनुयायी पर अलग–अलग थोड़ा–थोड़ा वृतान्त है । चारों वर्णाश्रमों का जौहर प्रथा, इत्यादि पर भी रोचक सूचना है ।

इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व विशेष रूप से इसलिए है कि यह पुस्तक किसी राजा के दरबार में नहीं लिखी गई न ही इस पर प्रशासकीय दबाव था । यह पहली पुस्तक है जो फारसी भाषा में किसी हिन्दू द्वारा लिखी गई मुसलमान सम्राटों का वृत्तान्त है । यह रोचक लगता है कि कुछ शताब्दी पहले एक हिन्दू इतिहासकार की – मुख्यत: औरंगज़ेबी तथा अन्य मुगलों तथा देहली सम्राटों के प्रति क्या भावना थी । चूंकि लेखक स्वयं दरबारी चक्र में था तथा बहुत सी घटनाओं का आँखों देखा हाल प्रस्तुत करता है पुस्तक का महत्व इससे और भी बढ़ जाता है । यद्यपि इसमें अन्य पुस्तकों का निचोड़ है । परन्तु बहुत कुछ नया भी है जैसे खुसरो के वध की घटना में सुजन राय के विचार । शाहजहाँ के लिए मुख्यत: सुजनराय ने वारिस के बादशाहनामा' का प्रयोग किया है । उत्तराधिकार के युद्ध में सुजन राय का विचार है कि यशवन्त सिंह के युद्ध से भाग जाने में उसके साथियों विशेषतया राजा राय सिंह सिसोदिया एवं सुजन सिंह चन्द्रावत के अपसरण का दखल है । यह भी सुजन राय ने नहीं कहा कि दारा शिकोह हाथी से खलीलुल्ला खाँ के कहने पर उतरा था । इस पुस्तक का अन्त दारा की सिन्ध से गुजरात की ओर पलायन के साथ हो जाता है एवं लेख अकस्मात ही टिप्पणी करता है कि औरंगजेब का देहान्त दक्षिण में अहमद नगर में 1707 में 92 वर्ष की आयु में हुआ । उसकी सल्तनत 50 वर्ष दो महीने 28 दिन रही । खुलासतुत्तवशिख में विभिन्न प्रकार की प्रकीर्ण सूचनायें मिलती हैं । कुम्भ मेले का वर्णन भी है जो हरिद्वार में प्रत्येक 12 वें वर्ष मनाया जाता है । कुछ ऐसी सूचनायें भी हैं जो दुष्प्राप्य हैं जैसे सुल्लान जलालुद्दीन फीरोज खलजी का कलीज खाँ के बजाए चंगेज़ के दामाद खालिज़ खाँ की नस्ल से होना । इस प्रकार खुलासतुतवशिख ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में महत्वपूर्ण पुस्तक है ।

14.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

(i) बाबरनाम के प्रति व्यक्त विभिन्न धारणाओं पर टिप्पणी कीजिए ।

(ii) बाबरनामा का ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में मूल्यांकन कीजिए ।

(iii) अकबरनामा पर टिप्पष्णी कीजिए ।

(iv) अबुलफजल की इतिहासकारिता का परीक्षण कीजिए ।

(v) खुलासतुत्तवशिख के लेखक के विषय में आप क्या जानते हो?

(vi) खुलासतुत्तवशिख के ऐतिहासिक महत्व पर निबंध लिखिए।

इकाई – 15

राजस्थान का ख्यात एवं बात साहित्य

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 ख्यात साहित्य सामान्य परिचय
15.2.1 विषयवार वर्गीकरण
15.2.2 शैलीगत वर्गीकरण
15.3 ख्यात साहित्य की प्राचीनता एवं उसके लेखक
15.4 ख्यातों की विषय –वस्तु
15.4.1 राजवंश सम्बन्धी ख्यातों की विषय–वस्तु
15.4.2 शासक विशेष सम्बन्धी ख्यातों की विषय–वस्तु
15.4.3 लगन विशेष सम्बन्धी ख्यातों की विषय–वस्तु
15.4.4 जाति विशेष सम्बन्धी ख्यातों की विषय–वस्तु
15.5 कुछ प्रसिद्ध ख्यातकारों का सामान्य परिचय
15.5.1 मुहता नैणसी
15.5.2 दयालदास सिंढायच
15.5.3 बांकीदास
15.6 बात साहित्य
15.6.1 बातों का वर्गीकरण
(क) ऐतिहासिक बातें
(ख) अर्द्ध ऐतिहासिक बातें
(ग) अन्य विषयों की बातें
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.10 प्रासंगिक पठनीय ग्रंथ

15.1 उद्देश्य

इस ईकाई के अन्तर्गत मैं आपकों राजस्थान के एक ऐसी दिलचस्प ऐतिहासिक साधन–स्रोत से परिचित कराऊंगा जो प्राचीनकाल से जनता और विद्वानों के लिए इतिहास की जानकारी देने का लोकप्रिय माध्यम रहा है और यहां के प्रसिद्ध इतिहासकारों ने अपने इतिहास–लेखन में इनसे पर्याप्त सहायता ली है ।

15.1 प्रस्तावना

ख्यात और बात साहित्य में मुख्य अन्तर यही है कि ख्यात किसी राजवंश, जाति विशेष या शासक विशेष का सम्पूर्ण वृत्तांत विस्तार से प्रकट करती है और बात किसी व्यक्ति विशेष या घटना विशेष का वर्णन संक्षेप में करती है । ख्यातें सौ पृष्ठों से लेकर पांच सौ पृष्ठों तक की होती हैं, वहां बात व 10– 15 पृष्ठों में समाप्त हो जाती है । अध्ययन की सुविधा के लिए पहले हम ख्यात साहित्य को लेते हैं ।

15.2 ख्यात साहित्य: सामान्य परिचय

'ख्यात' मूलतया संस्कृत भाषा का शब्द है । यह 'ख्या' प्रकथने धातु से 'क्त' प्रत्यय होने पर निष्पन्न होता है । यह शब्द ख्याति अथवा विशिष्ट उपलब्धियों को उजागर करने वाला ग्रंथ ख्यात कहा गया है । इन ख्यातों की विषय–वस्तु और शैली के विस्तार में जाने के पहले उनका वर्गीकरण यहां प्रस्तुत किया जाता है, जिससे आपको उनकी संरचना और विविधता का भी अनुमान हो जायेगा ।

15.2.1 विषयवार वर्गीकरण

(क) राजवंश संबंधी ख्यातें

(ख) शासक विशेष सम्बन्धी ख्यातें

(ग) स्थान विशेष सम्बन्धी ख्यातें

(घ) जाति विशेष सम्बन्धी ख्यातें

विषयवार वर्गीकरण में सर्वप्रथम राजवंश संबंधी ख्यातों का उल्लेख किया गया है । ये ख्यातें प्राय: राजस्थान की शासकीय जातियों से सम्बन्ध रखती है, जैसे कच्छवाहों री ख्यात जिसमें जयपुर राज्य का इतिहास समाविष्ट है । राठोड़ां री ख्यात जिसमें जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ आदि भूतपूर्व राज्यों के इतिहास का समावेश किया गया है । इसी प्रकार भाटियों, सीसोदिया, देवडों तथा बीकानेर के राठोड़ों आदि की ख्यातें उपलब्ध होती है ।

शासक विशेष से सम्बन्धित ख्यातें भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होती हैं जिनमें राजस्थान के प्रसिद्ध शासकों की राजनैतिक उपलब्धियों के अतिरिक्त उसकी सांस्कृतिक व पारिवारिक झांकी भी प्रस्तुत की जाती है । जैसे – महाराजा मानसिंह 'री ख्यात, महाराजा जसवंत सिंह (प्रथम), री ख्यात, महाराजा तखत सिंह री ख्यात, आदि ।

स्थान विशेष संबंधी ख्यातों का विषय मूलत : राजस्थान के बड़े ठिकाने हैं । जिनमें वहाँ के जागीरदारों की विभिन्न उपलब्धियों का वर्णन रहता है । असल में ये राज्य विशेष की ख्यात के पूरक ग्रंथ हैं । ठिकाणा रायपुर री ख्यात, ठिकाणा आऊवारी री ख्यात, ठिकाणा झींतड़ा री ख्यात, ठिकाणा खेजडला री ख्यात आदि ।

जाति विशेष सम्बन्धी ख्यातों से तात्पर्य राजवंशों के अतिरिक्त छोटी बड़ी राजपूत अथवा अन्य जातियों के वृतांत से है । राजपूत जातियों में धांधलां री ख्यात, सोनगरों री ख्यात

आदि नामों से मिलती हैं । इन राजपूत जातियों के अलावा अन्य जातियों की ख्यातें भी मिलती हैं, जैसे – ओसवालों री ख्यात, पालीवाल ब्राह्मणों री ख्यात, पुरोहितों री ख्यात आदि ।

15.2.2 शैलीगत वर्गीकरण

(क) सूत्रबद्ध ख्यात

(ख) स्फुट ख्यात

दूसरा वर्गीकरण शैलीगत किया गया है, जिसके मुख्य दो भेद हैं– प्रथम सूत्रबद्ध और दूसरा स्फुट। सूत्रबद्ध ख्यात में किसी राजवंश के शासकों का सिलसिलेवार व्यस्थित वर्णन होता है, जैसे जोधपुर राज्य री ख्यात जिसमें राव सीहा से लेकर महाराजा तखतसिंह तक का पूरा वृतांत क्रमश: दिया गया है । स्फुट ख्यात में इस प्रकार का सिलसिला नहीं रहता, इतिहास प्रेमी लोग अपनी जानकारी अथवा यारदाश्त के लिए कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों अथवा घटनाओं सम्बन्धी संक्षिप्त जानकारी का संग्रह लिपिबद्ध कर लेते थे । उनमें किसी प्रकार का कोई तारतम्य नहीं होता, एक घटना बीकानेर की तो दूसरी जैसलमेर की ओर तीसरी जयपुर की लिखी मिलती है । बांकीदास री ख्यात इसका एक उदाहरण है जिसमें एक पंक्ति से लेकर 10–12 पंक्तियों तक की विभिन्न प्रकार की असंबद्ध जानकारी संगृहीत है ।

15.3 ख्यात साहित्य की प्राचीनता एवं उसके लेखक

आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि राजस्थान में इतिहास लेखन की परम्परा केवल आधुनिक काल से ही प्रारम्भ नहीं हुई है, अपितु शताब्दियों पहले से यहाँ ऐतिहासिक ग्रंथ रचे जाते थे । गद्य और पद्य दोनों ही माध्यमों से यहाँ ऐतिहासिक साहित्य बहुत बड़ी संख्या में लिखा गया है । पद्य की परम्परा तो हमें जहां 13 वीं शताब्दी में ले जाती है वहीं गद्य की परम्परा 15 वीं शताब्दी से प्रारम्भ होती है । 17 वीं शताब्दी के पहले ख्यातों की सुस्पष्ट परम्परा तो नहीं मिलती परन्तु ऐतिहासिक बातों की परम्परा अवश्य मिलती हैं । इतिहासकारों का यह मन्तव्य है कि बादशाह अकबर ने जब अबुलफजल को अकबरनामा फारसी ग्रंथ लिखने का आदेश दिया तो उसके आदेश से राजस्थान के राजवंशों की ख्यातें यहाँ के शासकों ने लिखवाई । बादशाह के आदेश से यह ख्यात लिखने की परम्परा प्रारंभ नहीं भी हुई हो तो भी ख्यात लेखन की स्पष्ट परम्परा 17 वीं शताब्दी के पहले नहीं मिलती । सम्भव है अकबर का इतिहास–प्रेम इनके लेखन के पीछे कुछ प्रेरणा का काम कर गया हो । ख्यात लेखन का कार्य प्राय: चारण या पंचोली लोग करते थे, परन्तु इनके अतिरिक्त भी कई इतिहास–प्रेमी लोगों ने स्वतंत्र रूप से ख्यात लेखन का कार्य किया जिनमें मुहता नैणसी का नाम प्रसिद्ध है । नैणसी की ख्यात में जिन साधनों से सामग्री जुटाई गई है उनमें अनेक इतिहास संग्रहकों के नाम भी अंकित हैं । इसी तरह महाराजा मानसिंह री ख्यात के सहलेखक जोसी साहिबदाम और जैसलमेर की ख्यात के लेखक मेहता अजीत सिंह का नाम भी उल्लेखनीय है । चारण ख्यात लेखकों में चैनदान, जादूदान और दयालदास सिढायच के नाम उल्लेखनीय हैं । वीठु पना ने अनेक ख्यातों की प्रतिलिपियां की और उनमें संशोधन भी किया ।

15.4 ख्यातों की विषय–वस्तु

ऊपर ख्यातों के वर्गीकरण में जो विषयवार विभाजन किया क्या है उनमें ख्यातों की विविधता का मोटे रूप में संकेत किया जा चुका है । राजवंश की ख्यातों में यह प्रवृत्ति रही है कि वे पौराणिक आख्यानों के आधार पर अपना सम्बन्ध सूर्यवंश, चंद्रवंश, या अग्निवश से जोड़ते हैं । और अपना आदि पुरूष किसी दिव्य शक्ति वाले महापुरूष को बताते हैं । इतना ही नहीं पुराणों के आधार पर ख्यात में वंशावलियाँ देने का प्रयास भी किया जाता रहा है । राठोड़ों, कच्छवाहों और जैसलमेर के भाटियों की ख्यात में ये उदाहरण सुस्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं । डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मानना है कि 13 वीं शताब्दी तक की ये वंशावलियाँ प्रामाणिक नहीं कही जा सकती क्योंकि इनका आधार भाटों और बडवों की बहियाँ हैं जिनमें सुनी–सुनायी बातों के आधार पर ये वंशावलियाँ अंकित कर दी गई हैं, । 13 वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी के अंत तक प्राय : वंशावलियाँ सही पायी जाती हैं । ख्यातों में प्राय : राजवंश के शासक की उपलब्धियों का वर्णन मुख्य रूप से रहता है परन्तु उसके साथ ही उसके पुत्रों, प्रमुख सामंतों और अन्य राजवर्गीय कर्मचारियों के क्रियाकलापों का उल्लेख भी यथा स्थान मिलता है । इन ख्यातों में वंश के राज्य विशेष की राजनैतिक हलचलों के साथ अन्य कितनी ही जानकारियाँ अंकित रहती हैं जो विशेष रूप से मध्यकालीन राजस्थान के राजनैतिक ढांचे को समझने में बड़ी सहायक होती हैं, जैसे – किस राज्य में कब सामन्तों की कैसी भूमिका रही, समाज में किन मान्यताओं का निर्वाह होता रहा, आर्थिक व धार्मिक स्थिति क्या थी आदि । अनेक शासक विद्या–प्रेमी व कला–प्रेमी हुये हैं इन क्षेत्रों में उनकी देन का भी उल्लेख यथा स्थान किया गया है, जैसे–अनेक शासकों ने चरणों और भाटों को उनके उच्चकोटि के काव्य–सृजन के लिए पुश्तैनी तौर पर जागीरें दी और लाख पसाव देकर सम्मानित किया इनका उल्लेख इनमें मिल जाता है । इसके अतिरिक्त राजकीय कुरब–कायदे और राज्य स्तरीय रीति–रिवाजों का प्रामाणिक उल्लेख इन ख्यातों में हुआ है जो न केवल उस समय के प्रशासन बल्कि सामाजिक ढाँचे को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण साधन हैं ।

15.4.1 राजवंश संबंधी ख्यातों की विषय वस्तु

इन ख्यातों में मध्यकालीन राजस्थान की हलचलों को विस्तार के साथ दर्शाया गया है। साथ ही इनमें यहाँ के किसी राज्य की व्यवस्था में वहां के सामंतों की क्या भूमिका रही है, इसके अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री पाई जाती है । उदाहरण के लिए जोधपुर राज्य की ख्यात (जोधपुर का राठौड़ राजवंश) को ही लें तो उससे पता चलता है कि राव जोधा ने जोधपुर और आसपास के भू–भाग पर कब्ला करने के पश्चात् अलग–अलग भू–खण्ड अपने भाईयों और लड़कों में बांट दिये और उन्हें जागीरदार बनाकर शासन का जिम्मा सौंपा तथा राज्य से उनके स्थाई सम्बन्ध कायम करते हुये डावी और जीवणी (बायीं और दायीं) मिसलों की संरचना की जिसके अनुसार राव जोधा के वंशज डावी मिसल में बैठते थे और भाई और उनके वंशज जीवणी मिसल में बैठते थे । राजा सूरसिंह के प्रधान भाटी गोयन्ददास ने इस व्यवस्था को स्थायी रूप प्रदान किया और अन्य करब–कायदे सुनिश्चित किये जिससे राज्य व्यवस्था को सुदृढ़ आधार

मिला । इसके अलावा समय–समय पर सामन्तों और शासक के बीच राजनैतिक आधार किस प्रकार के रहे इसका इनुमान भी ख्यातों से मिल जाता है । राजा सूरसिंह तक राजवंश के बड़े जागीरदार अपने आपको राज्य–व्यवस्था का सहभागी मानते थे परन्तु राज सूरसिंह के समय में भाटी गोयन्ददास ने जो व्यवस्था कायम की उसके अनुसार इन जागीरदारों को एक मातहत का दर्जा दिया गया और समस्त राज्य ईकाई के पूर्ण राजनैतिक अधिकार शासक के हाथ में केन्द्रित हो गये, जिसके अनुसार किसी को जागीर प्रदान करना या जज करना शासक की इच्छा पर निर्भर हो गया, यद्यपि परम्परा के आधार पर किसी पुश्तैनी जागीरदार को बेदखल करना काफी कठिन था क्योंकि वे लोग उसे अपनी वतन–जागीर कह कर उस पर अपना वंशानुगत अधिकार का दावा प्रस्तुत करते थे ओर अन्ततोगत्वा उन्हें वह जागीर पुन: प्राप्त भी हो जाती थी परन्तु अब शासक को अप्रसन्न करना किसी भी जागीरदार के लिए जोखिम की बात हो गई थी । इस समय से यह प्रथा भी प्रचलित हो गई थी कि जागीरदार की मृत्यु के पश्चात् उसके लड़के को या गोद लिए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठने के पहले शासक से हुकमनामा प्राप्त करना पड़ता था और उसके लिए कुछ राशि भी नजर करनी पड़ती थी ।

ख्यातों में इन जागीरदारों द्वारा शासक को गांव की आमदनी के अनुसार प्रतिवर्ष रेख की जो नकद राशि देनी होती थी उसका उल्लेख भी यंत्र–तंत्र मिलता है । अंग्रेजी शासन के दौरान जिस प्रकार यहां के रजवाड़े अपनी स्वयं की सुव्यवस्थित सेना रखते थे, उस प्रकार की व्यवस्था मुगलकाल में नहीं थी । शासक लोग सैन्यबल के लिए अपने जागीरदारों पर निर्भर करते थे और जागीर के अनुसार शासक के पास चाकरी के रूप में भेजने के लिए घुड़सवार व पैदल सैनिकों की संख्या निश्चित की हुई थी । युद्ध के समय इन जागीरदारों को शासक की ओर से खलीता भेजा जाता था, तब उन्हें वे सैनिक तुरंत भेजने पड़ते थे । कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय के राज्य का ढाँचा किस प्रकार का था इसका ब्यौरा इन ख्यातों में मिल जाता है ।

यह तो आपको ज्ञात ही है कि मुगलकाल में राजस्थान के शासकों को सम्राट की ओर से मनसब दिया जाता था और उस मनसब के अनुसार उन्हें फौज रखनी होती थी तथा उसके निर्देश पर उन्हें फौजी मुहिम पर देश के किसी भी भाग में फौज सहित जाना पड़ता था इस व्यवस्था का भी अच्छा चित्रण इन ख्यातों में मिलता है । किस शासक को कब मनसब मिला और उसमें कौन सी कारगुजारी के कारण कब–कब वृद्धि या गफलत के कारण कमी हुई यह भी इनसे ज्ञात होता है । इस काल में शासकों के मुगल दरबार से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण वहाँ की राजनैतिक औपचारिकताओं रहन–सहन, खान–पान, आमोद–प्रमोद आदि का स्थानीय शासकों पर क्या प्रभाव पड़ा इसका संकेत भी इन ख्यातों में देखने को मिलता है ।

शासकों की मृत्यु के पश्चात् गद्दीनशीनी के लिए निश्चित परम्परा से हटकर किस कारण से कब–कब दूसरे दावे प्रस्तुत हुए और उनसे उत्पन्न कलह का राजनैतिक परिणाम क्या हुआ इसका भी बड़ा दिलचस्प वर्णन इन ख्यातों में मिलता है ।

उस समय में प्रचलित बहुविवाह प्रथा, दास–दासियों की प्रथा, पड़ौसी राज्यों से सम्बन्ध, राज्यों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा और ईर्ष्या–द्वेष के कारण घटने वाली घटनाओं की भी पूरी जानकारी इन ख्यातों से की जा सकती है । मुगलकाल में जोधपुर और जयपुर के शासकों के

बीच जो प्रतिस्पर्द्धा रही है उसके संकेत मारवाड़ की ख्यात और कच्छवाहों की वंशावली में देखने को मिलते हैं ।

इस प्रकार ख्यात किसी राजवंश से संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं का वृत्तांत ही न होकर वह उस समय को समझने का एक महत्त्वपूर्ण साधन भी है ।

15.4.2 शासक विशेष सम्बन्धी ख्यातों की विषय वस्तु

शासक विशेष से सम्बन्धित ख्यात में केवल उस शासक के जीवनकाल की घटनाओं का ब्यौरा रहता है, परन्तु उसमें भी सीमित समय (शासनकाल) के अन्तर्गत विषय–वस्तु लगभग वैसी ही होती है, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है । इस प्रकार की ख्यातों में महाराजा अभयसिंह री ख्यात, महाराजा मानसिंह री ख्यात, महाराजा तखतसिंह री ख्यात आदि उल्लेखनीय हैं ।

15.4.3 स्थान विशेष सम्बन्धी ख्यातों की विषय–वस्तु

कुछ छोटी ख्यातें किसी गांव, कस्बे या परगने को लेकर भी लिखी हुई मिलती हैं जैसे ठिकाने झींतड़े री ख्यात, ठिकाणे राजयपुर री ख्यात आदि । इनमें उस ठिकाने से सम्बन्धित जागीरदारों का वृत्तांत अंकित रहता है । इसका विस्तार राजवंश की ख्यात की अपेक्षा बहुत छोटा होता है परन्तु उनमें कुछ सगनीय विषमताओं और मान्यताओं का उल्लेख अवश्य मिलता है । इस प्रकार की ख्यातें उस गांव के जागीरदार की पीढ़ियों की जानकारी के अलावा समय–समय पर उनके द्वारा राज्य को दिये गये सहयोग एवं वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन अवश्य मिलता है इसके साथ ही उनके द्वारा किये गये जनहित के कार्यों का भी उल्लेख मिलता है । ये ख्यातें किसी राज्य विशेष में प्रचलित सामन्ती प्रथा के सम्बन्ध–सूत्रों को जोड़ने और उन्हें ठीक से समझने में सहायक सिद्ध होती हैं ।

15.4.4 जाति विशेष सम्न्धी ख्यातों की विषय–वस्तु

जाति विशेष की ख्यातों में ओसवालों, पंचोलियों और जैनगच्छों की ख्यातें भी मिलती हैं जो उस जाति विशेष के ऐतिहासिक पुरूषों और महत्त्वपूर्ण घटनाओं का दिग्दर्शन कराती हैं । पंचोलियो और ओसवालों की ख्यातों का सम्बन्ध किसी राजवंश विशेष को भी उजागर करता है और उस राज्य से उनके सम्बन्धों को भी रेखांकित करता है । ऐसी ख्यातों में इन लोगों द्वारा राज्य विशेष में की गई विशिष्ट सेवाओं और राज्य से प्राप्त जागीर, कुरब व अन्य सामान का उल्लेख विशेष रूप से देखने में आता है । इन ख्यातों के माध्यम से सम्बन्धित जाति विशेष की धार्मिक मान्यताओं और रीति–रिवाजों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । जैन–गच्छों सम्बन्धी ख्यातें जैन–धर्म के प्रचार–प्रसार और उनके प्रभाव को समझने के लिए बड़ी उपयोगी है ।

इस प्रकार ख्यात साहित्य राजस्थान के इतिहास का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण साधन–स्त्रोत है और उनके विस्तृत अध्ययन एवं उपयोग के बिना राजस्थान के इतिहास को सर्वांगीण रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता ।

15.5 कुछ प्रसिद्ध ख्यातकारों का सामान्य परिचय

राजस्थान में यूं तो कई छोटे–बड़े ख्यात–लेखक हुए हैं परन्तु तीन ख्यात लेखक अत्यधिक प्रसिद्ध हैं –

15.5.1 मुहता नैणसी

मुहता नैणसी जोधपुर का निवासी था । यह जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह (प्रथम) का समकालीन था । इसका पिता जयमल भी राज्य में उच्च पदों पर कार्य कर चुका था । नैणसी ने जोधपुर राज्य के दीवान पद पर कार्य किया और अनेक युद्धों में भी भाग लिया, उसे इतिहास में बड़ी रूचि थी । इसके द्वारा लिखी गई ख्यात नैणसी की ख्यात के नाम से प्रसिद्ध है । कर्नल टाड के अलावा यहां के सभी इतिहासकारों ने इसका किसी न किसी रूप में उपयोग किया है । ख्यात की उपयोगिता और इसका महत्व इस बात से ही प्रकट होता है कि गौरीशंकर ओझा ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यदि यह ख्यात कर्नल टाड को उपलब्ध हो गई होती तो उसका 'राजस्थान' कुछ और ही ढंग का होता । यह ग्रंथ रामनारायण दुगड़ द्वारा दो भागों में सम्पादित (हिन्दी अनुवाद) होकर काशी नागरी प्रचारिणी समा द्वारा संवत् 1982 में प्रकाशित हुआ था । मूल राजस्थानी में यह ग्रंथ बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से चार भागों में पूर्ण सन् व 967 तक प्रकाशित हुआ। इस ख्यात में राजस्थान के प्राय: सभी रजवाड़ों के राजवंशों का इतिहास नैणसी ने लिखा है । इसमें सीसोदियो, राठौड़ों और भाटियों का इतिहास अधिक विस्तार के साथ लिखा गया है । पहले राजवंश की वंशावली देकर बाद में प्रत्येक शासक की उपलब्धियों को 'बात' शीर्षक के अन्तर्गत लिया गया है जैसे– बात राव जोधा री आदि । मुहणोत नैणसी सम्वत् 1727 तक जीवित था अत: ख्यात में 18 वीं शताब्दी के – प्रारम्भ तक की घटनाओं का ही उल्लेख मिलता है । इसमें 13 वीं शताब्दी तक की वंशावली और संवत् इतने प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते परन्तु उसके बाद के संवत् और घटनाएं विश्वसनीयमानी जाती हैं । नैणसी ने जिन व्यक्तियों के सहयोग सेर ख्यात की सामग्री का संकलन किया उनके नाम भी उसने यथा स्थान दिये हैं । ख्यात की भाषा टकसाली राजस्थानी है, जिसमें अरबी फारसी के कुछ शब्दों का प्रयोग भी मिलता है । यह ग्रन्थ राजस्थान की राजपूत जाति, यहाँ की सामाजिक संरचना, आक्रांताओं से संघर्ष, जाति–प्रथा धार्मिक मान्यताएँ, भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक परिवेश संबंधी सूचनाओं से भी परिपूर्ण हैं ।

नैणसी का दूसरा ग्रंथ 'मारवाड रा परगना री विगत' है, जिसमें महाराजा जसवन्त सिंह (प्रथम) के अधीन सात परगनों का विस्तार से वर्णन किया गया है । यह एक प्रकार से मारवाड़ का गजेटियर है । जिसमें प्रत्येक परगने का प्रारम्भ में इतिहास दिया गया है और फिर खालसा और जागीर के गांवों की अलग–अलग आमदनी आदि संक्षेप में अंकित कर परगने के अर्न्तगत आने वाले प्रत्येक गांव की भौगोलिक स्थिति के साथ उसकी रेखा, पांच –वर्ष की आमदनी ओर गांव की उपज आदि विशिष्ट बातें भी अंकित हैं । इसमें जाति के अनुसार गांवों आबादी और पीने के पानी के साधनों का भी उल्लेख किया गया है । यह ग्रंथ मारवाड़ की सामाजिक,

आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक और प्रशासन सम्बन्धी सामग्री का अत्यंत प्रामाणिक साधन–स्रोत है । इस ग्रंथ का सर्वप्रथम सम्पादन डा० नारायण सिंह भाटी ने करके विस्तृत भूमिका सहित तीन भागों में (सन् व 968–74) राजस्थानी प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित करवाया ।

15.5.2 दयालदास सिंढायच

यह बीकानेर के महाराजा रतनसिंह, सरदार सिंह व डूंगरसिंह का समकालीन था । इसका जन्म बीकानेर के कुडिया ग्राम में हुआ तथा मृत्यु सन् 1891 में 93 वर्ष की आयु में हुई । इसने राजाश्रय में रह कर बीकानेर के राठौड राजवंश की विस्तृत ख्यात लिखी । इस ख्यात की प्रारंभिक सामग्री, वंशावली और राव जोधा के पूर्व के शासकों से सम्बन्धित हैं, राव बीका से लेकर महाराजा रतनसिंह तक का वृत्तांत विस्तार से दिया गया है । जोधपुर राज्य की ख्यात की तरह ही यह ख्यात बीकानेर राज्य 'के इतिहास को समझने के लिए बड़ी उपयोगी है इसमें बीकानेर के शासकों के मुगलों के साथ सम्बन्ध पर विस्तार से सामग्री दी गई है और उसकी पुष्टि के लिए कई फरमान. आदि भी उद्धृत किये गये हैं । लेखक ने बीकानेर की प्राचीन ख्यातों खासतौर से 'सुजानसिंह सूं गजसिंह कि तांई री ख्यात' तथा अन्य दस्तावेज़ों से भी पूरी सहायता ली है । दयालदास जाति से चारण यार और उसे डिंगल काव्य का अच्छा ज्ञान था, इसलिए उसने जगह–जगह पर ख्यात में घटना विशेष के समकालीन कवियों द्वारा कहे गये डिंगल गीत व दोहे आदि अपने मत की पुष्टि के लिए उद्धृत किये हैं । नैणसी की अपेक्षा इसकी भाषा सरल राजस्थानी है । इस ख्यात की मूल प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में सुरक्षित है । बीकानेर के राठौड़ राजवंश के इतिहास को समझने के लिए यह एक आधार भूत ग्रंथ है परन्तु इनकी क्रमबद्ध प्रेषणीयता अपनी अलग विशेषता रखती है । वैसे यह ख्यात लेखन परम्परा की अंतिम प्रौढ़ रचना है ।

दयालदास का दूसरा ग्रंथ 'देश दर्पण' है जिसमें बीकानेर के भूगोल और वहाँ के ठिकानों आदि का वर्णन हैं । इसने आर्याख्यान कल्पदुर्म ग्रंथ भी लिखा ।

15.5.3 बांकीदास

यह जोधपुर के महाराजा मानसिंह का राजकवि था । उच्चकोटि का कवि होने के साथ ही इतिहास–प्रेमी होने के कारण इसने अपनी याददास्त के लिए छोटी–बड़ी अनेक बातों का संग्रह किया जो राजस्थान की रियासतों के इतिहास को समझने में तो सहायक सिद्ध होती ही हैं परन्तु साथ ही अनेक सामाजिक व सांस्कृतिक सूचनाएँ भी इससे मिलती हैं । इनके ऐतिहासिक पुरुषों की पारिवारिक जानकारी और छोटी–बड़ी शाखाओं की वंशावलियां इतिहास के सम्बन्ध–सूत्रों को जोड़ने में सहायक होती हैं । यह ग्रंथ प्रो० नरोत्तम दास स्वामी द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान प्राच्य विद्या–प्रतिष्ठान जोधपुर से संवत् 2013 में प्रकाशित किया गया । डा० ओझा ने इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुये इसे इतिहास का एक खजाना कहा है ।

15.6 बात साहित्य

राजस्थानी वात साहित्य भी राजस्थान के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण साधन है । वात शब्द संस्कृत के वार्ता शब्द से बना है । वात से तात्पर्य यहाँ हल्के –फुल्के किस्से कहानी से नहीं है । जिन बातों की चर्चा हम यहां कर करहे हैं उनका मूल आधार यहां के प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरूष और ऐतिहासिक घटनाएँ हैं । कुछ बातें ऐसी थी हैं जिनका आधार प्रामाणिक इतिहास नहीं है परन्तु उनके सांस्कृतिक विषयों की महत्वपूर्ण सामग्री संचित है । ये बातें पुराने जमाने में मौखिक परम्परा पर जीवित थी, चारण और भाट लोग प्राय: ये बातें कह कर वंश विशेष के लोगों को उनके पूर्वजों की उपलब्धियों और चारित्रिक विशेषताओं से अवगत कराते थे, बाद में ये बातें सुरक्षा की दृष्टि से ग्रंथों में लिपिबद्ध भी होने लगीं । राजस्थान के विभिन्न ग्रंथागारों में ऐसी बातों की कई पोथियाँ आज भी सुरक्षित हैं आजादी के पहले इतिहास–प्रेमी लोग इन बातों को पढ़ने का शौक भी रखते थे, इसलिए इनकी कई प्रतिलिपयाँ बनकर दूसरे लोगों के हाथों में भी पहुंच जाती थीं ।

15.6.1 बातों का वर्गीकरण

इन वातों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

(क) ऐतिहासिक बातें

वे बातें जो विशेष रूप से किसी ऐतिहासिक पुरूष की उपलब्धियाँ अथवा घटना विशेष को प्रकाश में लाने के लिए लिखी गई हैं । इन बातों में कोई चरित्र काल्पनिक नहीं होता । ये बातें 3–4 पृष्ठों से लेकर 10– 12 पृष्ठों तक लिपिबद्ध मिलती हैं । 15 वीं शताब्दी से लिपिबद्ध होने वाली ये बातें 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लिपिबद्ध होती रही हैं । मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में इन बातों का खूब प्रयोग है । इन बातों में राव रिड़मल री बात, राव जोधाजी रे बेंटा री बात, राय. मालदे री बात, राव चन्द्रसेन री बात, राजा उदैसिंघ री बात, महाराजा सूरजसिंहजी रै राज री बात, राव लाखै री बात, राणै कूंधे री बात, राजा मानसिंह कछावै री बात, राजा अनूपसिंह रे कवरां री बात आदि उल्लेखनीय हैं । इन बातों में मुख्य रूप से जहाँ ऐतिहासिक तत्व की प्रधानता रहती है वहीं यहां की संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में जीवन–मूल्यों के संकेत भी मिलते हैं । साथ ही उस समय के रहन–सहन, खान–पान वस्त्राभूषण, अस्त्र–शस्त्र, युद्ध के तौर–तरीके और सामंतों के आपसी सम्बंधों विषयक सामग्री भी होती है । इनकी भाषा–शैली प्रभावशाली होती है । युद्ध आदि के वर्णन चित्रोपम होते हैं । एक उदाहरण प्रस्तुत है–

तरै घोड़ा री खुरी कराय ने मुगला री फौज मांहे घोड़ौ नांखीयौ । ऊपर लोह री घणी झीख पड़ी । पिण बाढीजतौ कूटीजतौ तेजसीजी हाजीखान थे तठै गयौ । उठे जाय नै कहण लागौ–कठे सिंधुडो? तरै हाजीखांन सं मलीयौ । तेजसीजी नुं दीठौ । तरै हाजीखांन आपरा साथ नुं कह्यौ – साबास तान्तुं, भली भांत आयौ, हिमै हुं ई आऊं छूं, बुरौ मत बोल । तरा पछै हाजी खान पिण हाथी थी उतरीयौ ने घोड़ै चढीयौ । हाजीखांन तेजसी नुं वाही सु. टोप माड़ौ

लागी, नै कितरीहेक निलाड़ में लागी । दोय दांत पाड़ीया । हाजीखान तो बचीयौ । पाखती रा तेजसी नुं कूट पाड़ीयौ ।

आपने उपरोक्त उदाहरण में देखा होगा कि इसमें वाक्य छोटे हैं और भाषा में प्रवाह है । इतिहास की रूखी घटनाओं को दिलचस्प बनाकर प्रस्तुत करना इनका उद्देश्य रहा है, इसलिए इनमें वार्तालाप शैली का भी कहीं–कहीं सहारा लिया गया है ।

(ख) अर्द्ध ऐतिहासिक बातें–

इन वातों का भी आधार तो इतिहास ही होता है परन्तु किसी घटना या चरित्र को रोचक बनाने के लिए उसमें कल्पना–तत्व का भी काफी सहयोग रहता है । फलस्वरूप ये बातें विशुद्ध इतिहास की दृष्टि से उतनी उपयोगी नहीं हो सकतीं, परन्तु इनमें तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं और यहां की संस्कृति से संबन्धित बड़ी उपयोगी सामग्री मिल जाती है । कुतुबद्दीन शाहजादेरी बात, जखडा मुखड़े री बात, एक राजपूत री बात, नर्बद सुपियाददे री बात, लाला मेवाड़ी री बात, बीकाजी कुंपावत री बात, राठौड़ सुन्दरदास बीकूपुरी री बात, आदि बातें इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं ।

(ग) अन्य विषयों की वातें -

इन बातों का मुख्य आधार यहां की संस्कृति है । प्रेम, कार, नीति आदि इनके प्रमुख विषय हैं । इनके कई चरित्र नायक इतिहास में ज्ञात हैं तो कई अज्ञात हैं । इस प्रकार की बाततों में ढोला–मारू री बात, जलाल बूबना री बात, बींजे सोरठ री बात, जेठवा ऊजली री बात, नापे सांखले री बात, राज भोज री बात आदि उल्लेखनीय हैं । इन बातों में प्रेम, वीरता, दान शीलता, गुण–ग्राहकता, वचन पालना आदि कई तथ्यों का उल्लेख मिलता है । जो राजस्थानी संस्कृति के विशेष जीवन–मूल्य रहे हैं और जिन्होंने कई ऐतिहासिक घटनाओं को भी प्रभावित किया है । नीतिगत बातों में राजनीति सम्बन्धी की शिक्षा देने में सक्षम हैं । इस प्रकार इन बातों की अपनी अलग विशेषता हैं और उसी के अनुसार इनकी उपयोगिता भी आंकी जानी चाहिए ।

जब राजस्थान अथवा उसके किसी भू–भाग का सर्वांगीण इतिहास लिखना हो तो इन बातों का उपयोग किया जा सकता है ।

15.7 सारांश

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि राजस्थानी ख्यातें और बातें अपने में इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री संजोए हुए हैं । यह सामग्री जहां इतिहास के त्रुटित सम्बन्ध सूत्रों को जोड़ने में सहायक सिद्ध होती है वहीं इतिहास में सामन्तों, मुत्सद्दियों और अन्य लोगों की भूमिका को भी उजागर करती है । उस समय के वातावरण, सामाजिक मान्यताओं और सांस्कृतिक मूल्यों के अध्ययन के लिये तो इनका उपयोग अत्यंत आवश्यक है । मध्यकालीन इतिहास लेखन में फारसी तवारीखों और उसी प्रकार के अन्य साधनों का उपयोग अधिक होता रहा है, जिससे राजस्थान के इतिहास संबंधी अनेक तथ्य ठीक से प्रस्तुत नहीं किये जा सके हैं, अत: यहां का संतुलित इतिहास लिखने हेतु इन स्थानीय संसाधनों का उपयोग अब आवश्यक समझा जाने लगा है । ख्यात व बात का इतिहास में प्रयोग करते समय उनकी प्राचीनता और

प्रामाणिक की परीक्षा अवश्य कर ली जारनी चाहिए । साथ ही उनमें जो अतिश्योक्तिपूर्ण अथवा काल्पनिक वर्णन कहीं–कहीं आ गये हैं, उनको भी सतर्कता पूर्व नजर अंदाज किया जाना चाहिए, जिससे वास्तविक तथ्य को ग्रहण किया जा सके ।

15.8 शब्दावली

कुरब–कायदे

रजवाडों में बरती जाने वाली राजकीय औपचारिकताएँ, जिसके अंतर्गत अलग– अलग स्तर के जागीरदारों तथा राज्य–कर्मचारियों को राजदरबार में शासक की ओर से व्यावहारिक सम्मान दिया जाता था तथा वे नियम जिनसे राजकीय गरिमा को बनाया रखा जाता था ।

लाखपसाव

चारण व भाट कवियों को राज्य की ओर से दिया जाने वाला सर्वोच्च सम्मान, जिसके अन्तर्गत रोकड़ राशि के अलावा हाथी, घोड़ा, जागीर व वस्त्राभूषण कवि को दिये जाते थे परन्तु इन सब का मूल्य लाख रुपये से कम ही होता था ।

मिसल (डावी व जीवणी) –

जोधपुर राज–दरबार में सामन्तों के बैठने की वह व्यवस्था जिसमें शासक के सम्मुख राव रिड़मल के वंशज दायीं ओर बैठते थे और राव जोधा के वंशज बांई और बैठते थे । यह व्यवस्था राव जोधा के समय से प्रारम्भ हुई परन्तु इसको निश्चित स्वरूप राजा सूरसिंह के समय में दिया गया ।

हुकमनामा

किसी जागीरदार की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र या दत्तक पुत्र को जागीर की गद्दी पर बैठने की शासक द्वारा दी जाने वाली स्वीकृति, जिसके लिए गद्दी पर बैठने वाले को एक निश्चित राशि भी राज्य–कोश में जमा करानी होती थी ।

खलीता–

शासकी की ओर से जागीरदार को भेजा जाने वाला एक प्रकार का आदेश पत्र ।

मनसब–

मुगल शासन प्रणाली की वह व्यवस्था जिसके अनुसार उसके सेवकों को सेवा के बदले निश्चित राशि अथवा उस राशि के पेटे जागीर दी जाती थी । राजस्थान के शासकों द्वारा मुगल–साम्राज्य को जो सैनिक सेवाएं दी जाती थीं उसके उपलक्ष में उन्हें 500 रुपये से लेकर 5,000 7– रूपये तक का मनसब और जागीरें अकबर के समय में दी जाती थीं । यहां के शासकों को मालवा, गुजरात आदि सूबे समय–समय पर मनसब के अधीन प्राप्त हुए थे । शासकों को मनसब के अनुसार पैदल व घुड़सवारों की निश्चित फौज तैयार रखनी पड़ती थी जिसका निरीक्षण मुगल अधिकारी करते थे ।

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 ख्यात साहित्य किसे कहते हैं? ख्यातें कितने रूपों में मिलती हैं, उनके महत्व को उदाहरण सहित प्रस्तुत कीजिये?

2 राजवंशों सम्बन्धी ख्यात साहित्य की विषय–वस्तु के महत्व पर प्रकाश डालिये?

3 इतिहास–लेखन में ख्यातों के योगदान पर विचार प्रकट कीजिये?

4 मुहणोत नैणसी, दयालदास सिढायच, बांकीदास इनमें से किसी एक पर टिप्पणी. लिखिये?

5 ऐतिहासिक बातों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये?

6 राजस्थान से सांस्कृतिक इतिहास लेखन में बातें ' किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं । इस पर प्रकाश डालिये?

7 अर्द्ध ऐतिहासिक बात का इतिहास लेखन में उपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए?

15.10 प्रासंगिक पठनीय ग्रंथ

(1) मुहणौत नैणसी री ख्यात–
सम्पादक – बदरी प्रसाद साकरिया
प्रकाशक – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

(2) बांकीदास री ख्यात
सम्पादक – नरोत्तमदास स्वामी
प्रकाशक – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

(3) महाराजा मानसिंह की ख्यात
सम्पादक – डा० नारायणसिंह माटी
प्रकाशक – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

(4) जैसलमेर री ख्यात
सम्पादक – डा० नायाणसिंह माटी
प्रकाशक – राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर

(5) मुहणोत नैणसी – व्यक्तित्व राणावत
लेखक – डा० मनोहरसिंह राणावत
प्रकाशक – राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

(6) ख्यातकार दयालदास सिढायच (परम्परा विशेषांक भाग –7475)
लेखक – डा० घनश्याम देवड़स
प्रकाशक – राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर

(7) मुहणोत नैणसी (परम्परा विशेषांक भाग – 39–40)

(8) ऐतिहासिक बातां (परम्परा विशेषांक भाग – 11)

(9) तीन जूनी बातां (परम्परा विशेषांक भाग – 73)

(10) राजस्थानी बात संग्रह (परम्परा विशेषांक भाग – 6–7)
सम्पादक – डा–० नारायण सिंह माटी
प्रकाशक – राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर

इकाई – 16

गुजराती रासमाला साहित्य का ऐतिहासिक महत्व

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 गुजराती रासमाला साहित्य

16.2.1 रासमाला के आधार मत साधन–स्रोत

16.3 रासमाला में गुजरात–सौराष्ट्र की भौगोलिक सीमा

16.4 रासमाला में वर्णित विभिन्न राजवंश

16.5 सल्तनत कालीन गुजरात और विशिष्ट शासक

16.6 रासमाला में प्रयुक्त विविध संवत्

16.7 रासमाला में वर्णित विशिष्ट घटनाएं

16.8 गुजरात के उद्योग धन्धे व व्यापारिक केन्द्र

16.9 गुजरात का राजनैतिक स्वरूप

16.9.1 प्रशासनिक व्यवस्था

16.9.2 राजस्व व्यवस्था

16.10 गुजरात में बसने वाली प्रमुख जातियां

16.10.1 शासक जातियां

16.10.2 जन जातियां

16.10.3 अन्य जातियां

16.11 गुजरात का सांस्कृतिक स्वरूप

16.12 उपसंहार

16.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.14 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको गुजराती रासमाला साहित्य के ऐतिहासिक महत्व के सम्बन्ध में संक्षेप में जानकारी देना है । भारतीय इतिहास–लेखन के सम्बन्ध में यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत आधारभूत प्रमुख साधन स्रोतों का विवेचन करते हुए रासमाला में वर्णित गुजरात की ऐतिहासिक सामग्री का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा । इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको निम्नलिखित बिन्दुओं का ज्ञान हो जाएगा :–

- रासमाला साहित्य क्या है?
- रासमाला साहित्य में वर्णित गुजरात सौराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ।
- रासमाला में दिग्दर्शित गुजरात के विभिन्न राजवंश, विशिष्ट शासक व विशिष्ट ऐतिहासिक घटनाएं ।

- गुजरात की राजनैतिक व्यवस्था तथा वहां की जातियों की जीवन शैली (आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान, धार्मिक विश्वास आदि)
- विभिन्न कलाएं और उद्योग धंधे और व्यापार – भारतीय इतिहास लेखन में रासमाला साहित्य की ऐतिहासिक उपादेयता ।

16.1 प्रस्तावना

निर्धारित रीति से इतिहास लेखन का हमारे देश में अभाव रहा है इसलिए प्राचीन इतिहास जानने के लिए हमें धार्मिक और साहित्यिक ग्रन्थों पर ही निर्भर रहना पड़ता हैं । इसके अतिरिक्त फाहियान, ह्वान चांग, इब्नबतूता आदि कई विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरण हमारे इतिहास के संदर्भ में उपयोगी सामग्री जुटाते हैं । मुस्लिम काल से विधिवत् इतिहास लेखन की परम्परा यहां प्रारम्भ हुई । मुस्लिम शासक इतिहास प्रेमी थे तथा कई मुस्लिम शासकों ने अपने समय का इतिहास आत्म चरित्र के रूप में लिखा एवं दरबारी इतिहासकारों से भी लिखवाया । इन ग्रंथों में मध्यकालीन भारतीय इतिहास की पुख्ता सामग्री मिलती है । मुस्लिम इतिहासकारों की भांति यूरोपीय इतिहासकारों द्वारा जो इतिहास लिपिबद्ध और क्रमबद्ध किया गया वह भी महत्वपूर्ण है ।

इतिहास के साधन स्रोतों में अंग्रेजीकाल में यूरोप और इंग्लैण्ड के जिन लोगों ने भारतीय इतिहास और संस्कृति पर कार्य किया उनके कार्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं –

1. प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन, अनुवाद व प्रकाशन आदि ।
2. स्वतंत्र ग्रन्थ–लेखन ।

इस दिशा में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों और शोध–पत्रिका की विशेष भूमिका रही । यहां से प्रकाशित शोध–पत्रिका में फरसी स्रोतों का सम्पादन एवं भारतीय मूल की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के ऐतिहासिक महत्व के ग्रन्थों की सामग्री प्रकाशित की जाती रही इसके अतिरिक्त संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान जैकोबी ने संस्कृत ग्रन्थों का उद्धार किया वह सर्वाविदित है । निकालाओं मनुची और फ्रेंकोई बर्नियर के यात्रा वृतान्त भी तत्कालीन इतिहास के कई पक्षों को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं ।

ऐतिहासिक साधन स्रोतों की इस श्रृंखला में आरलस्टाइन ने कश्मीर के लिप, पेंटिकन्स ने हिमाचल प्रदेश के लिए, जेम्स ग्राण्ट डफ ने मराठों के इतिहास के लिए जो कार्य किया उसी प्रकार का कार्य अलक्जण्डर किन्लाक फार्बस ने गुजरात के लिए रासमाला रचकर किया ।

16.2 गुजराती रासमाला साहित्य :

"रासमाला" के लेखक अलक्जेण्डर किनलाक फार्बस ने स्वयं ने इसके नामकरण के सम्बन्ध में लिखा है कि मेरा यह संग्रह विविध रासों में से संकलित है । अत: मैंने इसका नाम रासमाला रखा है । "रासमाला की रचना, रचनाकार ने चारणों तथा भाटों से प्राप्त सामग्री, गुजरात के ऐतिहासिक काव्यों, रासडों, वार्ताओं और शिलालेखों के आधार पर की । इसमें मात्र ऐतिहासिक लेखा–जोखा ही नहीं है, काव्य और वार्ताओं का आधार लेकर भी तथ्य वर्णित किए गए है । गुजरात के इतिहास के साध भारतीय इतिहास की सम्बद्धता तो इससे परिलक्षित होती

ही है । साथ ही इसके पड़ौसी राज्य राजस्थान का इतिहास तो इससे परस्पर जुड़ा है । दोनों राज्यों की कई ऐतिहासिक घटनाएं एक दूसरे पर आश्रित ही नहीं गुंथी हुई हैं । गुजराती और राजस्थानी भाषा में अत्यधिक साम्यता ही नहीं है 16 वीं शताब्दी तक तो दोनों भाषाओं का स्वरूप भी एक ही सा था । अत: गुजरात के साथ–साथ राजस्थान के इतिहास को समझने में भी रासमाला साहित्य सहायक सिद्ध होता है ।

16.2.1 रासमाला साहित्य के आधारभूत साधन–स्रोत :

1. फार्बस ने इस ग्रन्थ के निर्माण में यद्यपि रास या रासडों का मुख्य रूप से उपयोग किया है । परन्तु इसके अतिरिक्त भी जो साधन–स्रोत काम में लिए गये हैं वे निम्न प्रकार हैं :–
    1. गुजरात के ठिकानों की सामग्री
    2. चारणाभाटों की बहियों और जैन–ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री
    3. देवस्थानों, जलाश्यों, छतरियों के शिलालेख
    4. जातीय मान्यताओं और अन्धविश्वासों से सम्बन्धित सामग्री
    5. मौखिक परम्परा से चली आने वाली बातों, गीतों, कहावतों, दंतकथाओं पर आधारित सामग्री
    6. इंग्लैंड के इण्डिया हाऊस में संगृहीत आलेख

अब हम देखेंगे कि गुजरात के भू–भागों पर समय–समय पर शासन करने वाले राजवंशों के इतिहास और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों पर इन साधनों के सहयोग से लेखक ने किस प्रकार प्रकाश डाला है ।

16.3 गुजरात–सौराष्ट्र की भौगोलिक सीमा और स्थिति :

पश्चिमी भारत में विंध्याचल से अरावली पर्वत श्रेणियों के मध्य फैला भू–भाग गुजरात–सौराष्ट्र के नाम से जाना जाता है । मालवा, मेवाड़ मारवाड़ रियासतें गुजरात की सीमा से लगी हुई है । खम्भात, कच्छ की खाड़ी और अरब सागर से गुजरात की पश्चिमी सीमा मिली हुई है। पर्वत श्रृंखलाओं रणक्षेत्र तथा फलदार वृक्षों, कपास की खेती के लिए उपजाऊ काली मिट्टी के क्षेत्र से युक्त गुजरात की भौगोलिक सीमा व स्थिति ने उसे एक सुसम्पन्न प्रान्त बनाया । जलमार्ग की सुविधा से व्यापार की उन्नति हुई । इस प्रकार कृषि के साथ–साथ देश व विदेश में व्यापारिक क्षेत्र में भी विकास करने का अवसर इस प्रान्त को मिला जो कुछ इसकी भौगोलिक स्थिति से सम्भव हुआ ।

16.4 रासमाला में वर्णित विभिन्न राजवंश :

रासमाला में चावड़ा वंश, सोलंकी वंश, परमार वंश, बाघेला वंश जूनागढ़ के चूडासमा (यादव), लूणवाड़ा के सोलंकी, सोढ़ा, काठी, झाला, ईडर के राठौड़ और पीरम के गोलिह राजवंश का वर्णन विस्तार से किया गया है । इसमें अणिहिलपुर के चावड़ा वंश तथा सोलंकी वंश के राजाओं की राजवाली (वंशावली) देकर प्रत्येक शासक के शासनकाल की घटनाओं का विस्तार से

वर्णन किया गया है । "अणिहिलवाड़ा राज्य का सिंहावलोकन" नामक एक पूरा अध्याय अलग से लिखा हुआ है । इसके अतिरिक्त पंचासर के शासक जयशेखर, बाल मूलराज, भीमदेव द्वितीय, वस्तुपाल तेजपाल, राजा कर्ण वाघेला पर विशेष वृतान्त उल्लखित हैं ।

16.5 सल्तनत कालीन गुजरात और विशिष्ट शासक :

सल्तनतकालीन गुजरात के राजपूत सुल्तान जो टाक (तक्षक)– जातीय राजपूत से मुसलमान बने, इसलिए राजपूत सुल्तान कहलाये, उनका वर्णन किया गया है इसके पश्चात् अहमदाबाद के यवन राजवंश के शासकों का उल्लेख मिलता है । यवनों ने यहां के हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने हेतु बाध्य किया और इससे प्रमुखतया यहां की शासकीय इकाई अधिक प्रभावित हुई । इस प्रसंग में यहां एक बात द्रष्टव्य है कि कुछ लोगों ने तो सहजता से इस्लाम स्वीकार कर लिया चाहे भय से या प्रलोभन से परन्तु एक वर्ग ऐसा भी था जो न प्रलोभन से आकृष्ट हुआ न यवनों से भयाक्रान्त । इस्लाम धर्म को स्वीकार करने से जिसने मरना बेहतर समझा । अपने धर्म की रक्षार्थ सल्तनतकालीन सुल्तानों की शक्तिमान राज्य सत्ता से, कम शक्तिशाली होते हुए भी टक्कर ली । महमूद बेगड़ा ने सोरठ के राव और चांपानेर के रावल को राज्यच्युत कर दिया था परन्तु ईडर के रावों, चावडों झालों, गोहिलों और अन्य राजपूतों ने बार–बार आक्रमण होने के उपरान्त भी अपनी स्वतंत्रता और अपनी–अपनी भूमि पर स्वामित्व बनाये रखा ।

गुजरात के सल्तनतकालीन सुलतानों में सबसे अधिक प्रतापी सुल्तान महमूद बेगड़ा हुआ । फरिश्ता के अनुसार गिरनार और चम्पानेर के दो दुर्जय गढ़ों को जीतने के कारण उसका नाम बेगड़ा (बे+गढा = दो को जीतने वाला) पड़ा । महमूद वेगड़ा के संबंध में बहुत सी कथाएं प्रचलित है जो अहमदाबाद के शासकों में उसके अत्यन्त लोकप्रिय होने का प्रमाण है । इन कथाओं में उसके शारीरिक गठन, बल, शौर्य न्याय, परोपकार, इस्लाम की: आज्ञा पालन में दृढ़ता और उसके विचारवान स्वरूप का बखान मिलता है ।

सल्तनतकालीन गुजरात के विशिष्ट शासकों में महमूद बेगड़ा के अतिरिक्त मुजफ्फरशाह (प्रथम), अहमदशाह, मुहम्मदशाह (प्रथम), कुतुबुद्दीन मुजफ्फर (द्वितीय), बहादुरशाह, मुहम्मदशाह (चौथा) और मुजफ्फर (तृतीय) के नाम गिनाये जा सकते हैं । लतीफ खां इस वंश का अन्तिम प्रभावी शासक था ।

मुगल सम्राट अकबर ने 18 नवम्बर सन् 1572 को अहमदाबाद पर विजय हासिल करके सल्तनतकालीन गुजरात के इस अहमदाबाद के राजवंश के प्रभुत्व का अंत किया ।

16.6 रासमाला में प्रयुक्त विविध संवत् :

रासमाला में काल पचाना के लिए जिन विशिष्ट सन् संवतों का प्रयोग किया गया है वे इस प्रकार हैं –

बल्लभीसंवत्

काठियावाड़ के वल्लभीनगर के विनाश से जो संवत् चला वह "वली संवत्सर" या "वल्लभी संवत्" कहलाया । यह संवत् शक संवत् से 241 वर्ष उपरान्त प्रारम्भ हुआ । वल्लभी

संवत् गुप्त संवत् की भांति 26 फरवरी से प्रारम्भ होता है इन दोनों की कालगणना का प्रारम्भ एक समान होने से दोनों में बहुत अधिक साम्य है ।

हिजरी सन्

यह मुसलमानी सन् जो मुहम्मद साहब के मक्के से मदीने पलायन की तिथि (15 जुलाई सन् 622 ई.) से प्रारम्भ होता है ।

ईसवी सन्

ईसा मसीह की निधन तिथि से गिनी जाने वाली वर्षगणना जो अंग्रेजी वर्ष गणना के नाम से जानी जाती है । ईसा पूर्व (बी.डी) और ईसा पश्चात् (ए.डी) इन दो रूपों में इसका प्रयोग होता है । यह सन् विक्रम संवत् से 57 वर्ष पीछे है ।

सिंह संवत्

सिद्धराज जयसिंह सोलंकी ने सौराष्ट्र विजय के बाद अपने नाम से "सिंह संवत्सर" चलाया । यह संवत् का आरम्भ विक्रम संवत् 1169 – 70 (सन् 1113 – 14 ई.) में हुआ था ।

विक्रम संवत्

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होने वाला यह संवत् प्रारम्भ में मालवा संवत् कहलाता था । चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से विक्रम संवत् का प्रारम्भ माना जाता है और इसी के नाम पर इसका नामकरण हुआ । यह संवत् भी कई लोग चेत्रादि से एवं कई श्रावणादि से प्रारम्भ करते हैं जिसके कारण कई बार प्राचीन ग्रन्थों में इस संवत् में कुछ महीनों का अन्तर भी दिखाई देता है ।

16.7 रासमाला में वर्णित विशिष्ट घटनाएं –

जैसाकि पहले कहा गया है गुजरात के अलग–अलग भू–भागों पर कई राजवंशों ने राज्य किया और मध्यकाल में तो मुगलों से संघर्ष होने के कारण यहां का इतिहास बड़ा रोमांचकारी रहा । फार्बस ने स्थानीय लोकगाथाओं और जनश्रुतियों के आधार पर विशिष्ट घटनाओं का बड़ा चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है कुछ एक घटनाओं का उल्लेख यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

वल्लभी का विनाश वि.सं. 375(319 ई. अणहिलपुर) अणहिलवाड़ा की स्थापना वि.सं. 802(747 ई.) मूलराज सोलंकी का अभ्युदर, सोमनाथ पर महमूद गजनी की चढ़ाई (1024 ई.) सिद्धराज जयसिंह का अष्णुदय, मोहम्मद गौरी का आक्रमण, पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द का संघर्ष (सन्1191–1194) सल्तनत कालीन गुजरात के राजपूत सुल्तानों तथा मेहमूद बेगाड़ का अभ्युदय तथा मुगल सम्राट 'अकबर द्वारा ई. सन 1572 में अहमदाबाद पर विजय प्राप्त करके अहमदाबाद के राजवंश की राजसत्ता का अन्त आदि रासमाला में दर्शायी गयी कुछ विशिष्ट घटनाएं हैं ।

इन घटनाओं के दूरगामी परिणाम हुए है अनेक राजवंशों का अन्त और उदय इनके साथ जुड़ा हुआ है तथा धार्मिक व सांस्कृतिक उथल–पुथल को समझाने के लिए भी इन घटनाओं का अध्ययन अपेक्षित हैं ।

16.8 उद्योग–धन्धे व व्यापारिक केन्द्र :

गुजरात भौगोलिक एवं उद्योग धंधों की दृष्टि से एक सम्पन्न प्रान्त रहा है अत: यहां कई उद्योग–धंधे पनपे हैं जो यहां के लोगों की जीविका के प्रमुख साधन हैं ।

रासमाला में उल्लखित वर्णन के आधार पर गुजरात के उद्योग धन्धों, आयात निर्यात, व्यापारिक रास्तों और व्यापारिक केन्द्रों के सम्बन्ध में भी जानकारी मिलती है । सड़क मार्ग से तो गुजरात का व्यापार देश के अन्य प्रदेशों से होता ही था इसके साथ ही समुद्री मार्ग द्वारा उस समय जो व्यापार होता था वह प्रमुख था । गोगो खम्भात की खाड़ी में एक अच्छा जहाजी अड्डा था जहां के अधिकांश निवासी मल्लाह का काम करते थे । गोपों की भांति पीरम का भी उस समय व्यापारिक एवं सामरिक महत्व था ।

पीरम प्राचीनकाल में जहाजी अथवा मललाही कामों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण रहा । पीरम के गढ़ पर बैठे हुए चौकीदार के आगे खम्भात का अखात इस प्रकार आ जाता है कि गुजरात के समृद्ध बन्दरगाहों पर जाने वाले किसी भी जहाज का, दिन में सफेद झण्डा और रात में उसकी रोशनी दृष्टि में आए बिना नहीं रह सकती थी । पीरम की महत्वपूर्ण स्थिति के कारण ही सात सौ मल्लाहों और समस्त कोलियों को मारकर मोखड़ा गोहिल ने पीरम और गोगो को अपने अधिकार में लिया और अपनी शक्ति बढ़ाई थी ।

पीरम से कितने ही देशों को रास्ता जाता था और विभिन्न देशों से व्यापार होता था । पीरम के शासक के पास जहाजी बेड़ा था तथा इस मार्ग से गुजरने वाले सभी जहाजों से वह कर वसूल करता था इससे आसपास के क्षेत्रों में उसकी धाक थी ।

मुहम्मद तुगलक से पीरम के राजा के झगड़े का तात्कालिक कारण यह बताया गया है कि दिल्ली का एक व्यापारी सोने का चूरा भरकर चौदह जहाज पीरम लाया था जिसे लूट लिया गया । इस प्रकार उस समय होने वाले राजमार्ग के व्यापार सम्बन्धी सूचनाएं भी मिलती है । गुजरात के सूबेदार अहमद अरूयाज के समय " मलिकु तुजर" अथवा "व्यापारियों का सरदार" पदधारी एक अमीर था जिसे सूरत के नीचे समुद्री किनारे पर स्थित नवसारी की जागीर मिली । इससे ज्ञात होता है कि उस समय गुजरात में व्यापार को कितना महत्व दिया जाता था ।

गोगो और पीरम की भांति माबीडचीन और गोधा ,का बन्दरगाह जो पीरम द्वीप के समीपवर्ती भाग में स्थित था और काठी जाति के लोगों के अधीन लम्बे समय तक रहे । अकबर ने बाद में जाकर उन्हें अपने अधिकार में लिया ।

इन विवरणों से गुजरात. के विभिन्न देशों से व्यापारिक सम्बन्धों, विविध जलमार्गों, व्यापारिक स्थिति एवं महत्व के सम्बन्ध में मिलने वाली जानकारी काफी महत्वपूर्ण है । अरब सागर के किनारे स्थित गुजरात प्राचीनकाल से व्यापार और वाणिज्य का केन्द्र रहा है । पश्चिमी जगत की ओर खुलने वाला भारत का एक महत्वपूर्ण वातायन है ।

16.9 गुजरात का राजनैतिक स्वरूप :

16.9.1 प्रशासनिक व्यवस्था :

गुजरात में चावड़ा, सोलंकी, परमार, वघेला, चूडासमा आदि राजवंशों ने अपने ढंग से राजसंत्रीय प्रणाली के अनुरूप प्रशासन किया । कालान्तर में शासक एवं जागीरदारों के आपसी

सम्बन्ध, सत्ता प्राप्ति के आकर्षण और महत्वाकांक्षा के कारण कटु होते गये तथा जब भी केन्द्रीय सत्ता में शिथिलता या कमज़ोरी देखी गयी तब काठी, गोहिल, राठोड़, झाला इत्यादि ने स्वयं अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम कर दी ।

मुसलमानों के आक्रमण से गुजरात में अव्यवस्था व अराजकता फैलती गयी । अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमणों का गुजरात पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु कुतुबुद्दीन ऐबक और महमूद गजनवी के आक्रमणों के परिणामस्वरूप गुजरात की प्रशासनिक शक्ति डगमगा गयी और प्रथम सोलंकीवंश की समाप्ति हुई ।

सल्तनतकाल के सुल्तानों ने गुजरात पर प्रभुसत्ता की फिर भी प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सत्ता बनाए रखने वाले परम्परागत राजपूतों की जागीरे कायम रही । मुसलमान बादशाहों द्वारा नियुक्त सूबेदार गुजरात की प्रशासनिक व्यवस्था की देखभाल करते थे जिनका अधिकांश समय तो विद्रोहियों को दबाने में ही व्यतीत होता था । मुहम्मद तुगलक ने गुजरात में विद्रोह दबाने का कार्य स्वयं अपने हाथ में लिया पर उसे भी आशिक सफलता ही मिली । मुसलमानों की अधीनता तो स्थानीय जागीरदारों को स्वीकार करनी पड़ी पर जब भी अवसर मिलता वे अपनी शक्ति का संचय करके उसकी अवहेलना करने से भी नहीं चूकते थे । अकबर ने उदार नीति का अनुसरण कर स्थानीय जागीरदारों को योग्यतानुसार शाही दरबार में स्थान देकर उनकी शक्ति का उपयोग अपने राज्य के संवर्द्धन हेतु किया ।

औरंगजेब के राज्यकाल तक गुजरात के बहुत से जमींदार शाही खिदमत करते रहे उसके बाद वे स्वतंत्र होते गये । जब अव्यवस्था अधिक फैली तब छोटे–छोटे जमींदारों तक ने शाही सल्तनत से अपनी जमीनें बलपूर्वक वापिस छीन ली । मुसलमानों के प्रभुत्व के युग में गुजरात में शाही सूबेदार और शाही सेना की टुकड़ियां जो "थाणे" कहलाते थे, नियुक्त होते फिर भी सारा प्रदेश हिन्दु सरकारों में बंटा हुआ था । राजा, राजपूत, कोली, गरासि या सभी जागीरदारों ने शाही अधीनता व निजी स्वतंत्रता इन दो अवस्थाओं में अपना अस्तित्व कायम रखा ।

16.9.2 राजस्व व्यवस्था :

गुजरात में अधिकतर गांवों से जो राजस्व वसूल किया जाता वह पैदावार के हिसाब से न वसूल करके एक निश्चित बंधी रकम के रूप में वसूला जाता था । कुछ गांवों की जमीन को तीन हिस्सों में बांट रखा था जो "तलपत" कहलाते थे । ये "तलपत" शाही सम्पति माने जाते थे । जिसका एक हिस्सा "बांटा" के नाम पर जमीदार को दिया जाता था । जिससे वे अपने गांव में पहरे–चौंकी का इन्तजाम करते और जरूरत पड़ने पर बादशाही खिदमत में हाजिर होते। बादशाही माताहती कबूल करने वालों को "सलामी" और "पेशकशी" भी देनी होती थी । मुगल बादशाहों ही नहीं गुजरात के सुलतानों के समय में भी जागीरदारों से राजस्व वसूल करने के लिए सेना की आवश्यकता सदैव बनी रहती थी ।

"खिडणी" या खिरनी नामक कर बड़े जमींदारों से भी वसूल किया जाता था । जिन गांवों की उपज का लेखा–जोखा लिया जाता थे "रैयती" कहलाते थे तथा जिनसे केवल कर लिया जाता वे "मेवासी" कहलाते थे । राजस्व अधिकारी को वार्षिक कर जमा कराया जाता उसे "जमाबन्धी" तथा सेना के अधिकारी जो कर वसूल करते वह "घासदाना" कहलाता था ।

उपज से मिलने वाला भाग ठाकुर की आमदनी का मुख्य जरिया था । बाग, गन्ना, कपास, तमाखू, अफीम आदि फसलें जिनका कुंता करना कठिन होता उनका नकदी में लगान वसूल होता । जब किसी ठिकाने के छुटभई को जमीन दी जाती तो प्रात के कुछ भागों में ऐसा रिवाज था कि जिन फसलों का नकदी में लगान वसूल होता वह तो स्वयं ठाकुर लेता और जो लगान उपज की किस्म में वसूल होता वह छुटभई लेता । पड़त जमीन को खेती के योग्य बनाने वाला किसान कुछ वर्षो तक लगान "दाणा" (दाना) के रूप में न देकर "नाणा" (नकद) के रूप में ही देता । सभी वृक्षों की उपज, लावारिस माल गांव में मल से आये ढोर का हकदार, व्यापारी के माल पर चुंगी (मापा), शराब की दुकान से कर वसूल करना और मरे हुए जानवर की खाल के बदले चमारों से कर वसूल करने का हक जमीदार का होता था । शादी –विवाह पर "लाग" फौजदारी मामलों का दण्ड और अदालती मामलों के दावों की चौथ का हिस्सा ठाकुर लेता।

सल्तनत एवं मराठाकालीन गुजरात की भू –राजस्व व्यवस्था ब्रिटिश सत्ता के अन्तर्गत परिवर्तित हुयी और उसमें प्रजा विशेषकर कृषक और व्यापारियों के लिए अधिक अनुकूल सुधार किये गये तथा यूरोपीय सिद्धान्तों के आधार पर अदालते स्थापित कर भू–राजस्व वसूलने की व्यवस्था की गयी ।

16.10 गुजरात में बसने वाली जातियां :

जातिप्रथा हिन्दू समाज की ऐसी व्यवस्था है जो इतिहास और संस्कृति के अध्येताओं का ध्यान अनायास ही अपनी और आकृष्ट कर लेती है । भारत में मूल रूप से चार ही जातियां थी – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र का कार्य पूजा–पाठ करना, क्षत्रिय का कार्य युद्ध करना, वैश्य का कार्य कृषि और व्यापार करना तथा शूद्र का कार्य अवसर कर्म करना । प्रारम्भ में जातियों का नामकरण कर्म के आधार पर हुआ बाद में वंश परम्परागत रूप से । वंश परम्परागत रूप से विभाजित विभिन्न जातियों और प्रजातियों को मुख्य रूप से निम्नांकित तीन भागों में बांट सकते हैं : –

16.10.1 शासक जातियां - सोलंकी, चावड़ा, वघेला, चूड़ासमा, सोढा, काठी, झाला, राठौड़, गोहिल, परमार इत्यादि जातियां गुजरात की शासक जातियों के अन्तर्गत आती है । जो कि क्षत्रिय वर्ग के अन्तर्गत आती है ।

16.10.2 जन जातियां - मील, कोली, मीणा, मेर, गिरासिया आदि आदिवासी जातियों के लोग जन जातियों के अन्तर्गत आते हैं ।

16.10.3 अन्य जातियां - ब्राह्मण, राजपूत, बनिया, भाट, बारहट, कलबी (कुणबी), ओड, नाई, धोबी, कुम्हार, चमार आदि । इनके अलावा विभिन्न इस्लाम धर्मी जातियां भी गुजरात में बसती थी । यहां यह उल्लेखनीय है कि हिन्दू जाति के अनेक लोगों ने परिस्थितिवश इस्लाम धर्म अंगीकार कर लिया था ।

16.11 गुजरात का सांस्कृतिक स्वरूप :

रासमाला में गुजरात के सांस्कृतिक स्वरूप को उजागर करने वाले विविध पक्षों (जैसे स्थापत्य कला, चित्रकला, साहित्य, पर्व, त्यौहार, लोकमान्यताएं व जन धारणाओं) का उल्लेख मिलता है जो कि इस ग्रन्थ का एक बड़ दिलचस्प भाग है ।

रासमाला में वर्णित अणहिलपुर की बसावट का वर्णन अनायास ही आधुनिक नगर स्थापत्य की याद दिला देता है – "अणहिलपुर बारह कोस के घेरे में बसा हुआ था, जिसमें बहुत से देवालय और विद्यालय थे । चौरासी चौक थे और चौरासी ही बाजार थे, जिनमें सोने रुपये की टकसालें थी । जिस प्रकार मित्र–मिल वर्णों के घर मित्र चौंकों (चतुष्कों) में बने हुए थे, उसी प्रकार हाथी दांत, रेशम, हीरा मोती आदि के अलग–अलग बाजार लगते थे । सर्राफों का बाजार अलग था और सुगन्धित द्रव्यों और लेपनादि की वस्तुओं का अलग, एक बाजार वैद्यों का था एक कारीगरों का और एक सोने –चांदी के काम करने वाले सेनिकों (स्वर्णकारों) का ।

इसी प्रकार राजमहल, राजमहल के समीप ही स्थित आयु धागार, फीलखाना, हस्तिशाला, घुड़शाला, रथशाला और राजकाज की कचहरियों का निर्माण कराया जाता था । अब तो उनके भग्नावशेष ही रह गये हैं परन्तु इन इमारतों के खण्डहरों, कुओं, तालाबों, कीर्ति स्तंभ तथा देवालयों के आधार पर तत्कालीन स्थापत्य की जानकारी मिलती है । जिंजुवाड़ा, डमोई के किले इत्यादि से दुर्ग स्थापत्य एवं सिद्धपुर के रूद्रमाला देवालय व मोढारा के देवालय से गुजरात के मंदिर स्थापत्य की जानकारी मिलती है ।

स्थापत्य की भांति ही वहां की चित्रकला और साहित्यिक काव्यकृतियों का उल्लेख भी यथा प्रसंग रासमाला में वर्णित है । स्थापत्यकला के अनेक नमूनों के फार्बस ने रेखाचित्र बनाकर अपने ग्रंथ में दिये हैं जिनसे यहां के प्राचीन कलाकौशल का अनुमान लगाया जा सकता है । देवालयों में स्थापित उपास्य एवं अलंकरण ही सुन्दर तथा कलापूर्ण मूर्तियां गुजरात की मूर्तिकला के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं । नृत्य कला में गुजरात के गरबा नृत्य का अपना महत्व है ।

गुजरात में मनाये जाने वाले पर्वों में नवरात्र, दशहरा, धनतेरस, काती चौदस, दीपावली, आखातीज (अक्षय तृतीया), गौरीपूजन पर्व अन्नकूट, गोवर्द्धन पूजा आदि प्रमुख हैं । इन पर्वों और त्यौहारों के अतिरिक्त विवाह की विविध रस्मों, लोकप्रचलित मान्यताओं, अंतिम संस्कार, मरणेत (मरणोत्तर) मति, स्वर्ग नर्क और मोक्ष सम्बन्धी धारणाएं, श्राद्ध मत प्रेतादि के सम्बन्ध में प्रचलित जन–विश्वास आदि का रासमाला में विस्तार से वर्णन मिलता है जो गुजरात के सांस्कृतिक स्वरूप का सम्यक दृश्य पाठक के सम्मुख उपस्थित करता है ।

16.12 उपसंहार :

अलेक्जेण्डर निकलाक फार्वस ने चारणों भाटों से प्राप्त सामग्री गुजरात के ऐतिहासिक काव्यों, रासडा, कर्त्ताओं और शिलालेखों के आधार पर रासमाला की रचना की । रासमाला के चार भाग है । फार्बस ने रासमाला के तीन भागों में तो गुजरात का भौगोलिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक विवरण प्रस्तुत है ।

चावड़ा, सोलंकी, परमार, वाघेला, चूडा समा आदि राजवंशों द्वारा गुजरात का शासन संचालित किया गया उसका विस्तार से वर्णन रासमाला में करते हुए रासमाला के रचयिता ने सोढा काठी, झाला, लूणवाड़ा के सोलंकी ईडर के राठौड, पीरम के गोहिलों के राजनैतिक प्रभुत्व को दर्शाया है । विशिष्ट वीरों एवं शासकों पर अलग से सविस्तार प्रकाश डालकर उनकी चारित्रिक विशेषताओं व राजनैतिक उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए तत्कालीन गुजरात की ऐतिहासिक और राजनैतिक अव्यवसग़ओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है । इसी क्रम में रासमाला के तीसरे भाग में सल्तनत कालीन गुजरात के राजपूत सुल्तानों और अहमदाबाद के यवन शासकों के सर्वाधिक प्रतापी सुल्तान महमूद बेगड़ा एवं अन्य शासकों का वृतांत दिया गया है ।

रासमाला के चौथे और अंतिम भाग सांस्कृतिक गुजरात में जन–जन का दैनिक जन–जीवन, जातियां, रीतिरिवाज, विवाह, गृहस्थ जीवन, लेन–देन, व्यवहार, दानदक्षिणा, रोग, उपचार, मृत्यु, सती और मरणोत्तर कर्म आदि सभी मूलत: धर्मशास्त्रधारित और बाद में विकृत रूप में रूढ हुए प्रसंगों का बारीकी से चित्रण किया गया है । प्रशासक और विदेशी होते हुए भी लेखक ने गुजरात के सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं और आचार–विचारों को प्रस्तुत करने में बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है । फिर भी गुजरात के ऐतिहासिक और राजनैतिक स्वरूप के साथ–साथ सांस्कृतिक गुजरात की झांकी जो इसमें मिलती है वह महत्व की है ।

सांस्कृतिक स्वरूप के अतिरिक्त इसी भाग में लेखक ने प्रशासन और राजस्व संबंधी प्रबंधों, ठाकुरों और छोटे–छोटे राजाओं के छोटी–छोटी बातें आपसी झगड़ों, बदले की भावना और गुजरात की क्षीण जनशक्ति की तरफ भी दृष्टिपात किया है । अंग्रेज अधिकारियों के पत्राचार से उद्दत अंशों से उनकी राजनीतिक धारणाओं और कूटनीति का पता चलता है । भारतीयों की स्वभावगत कमजोरियों से और अराजकता पूर्ण स्थिति से अंग्रेज अधिकारियों ने जिन चतुराई से अधिक से अधिक लाभ उठाने का कार्य किया । ऐसे घटना–प्रसंग भी लेखक ने उद्धृत किये हैं जो तथ्यात्मक अध्ययन के लिए बहुत ही सहायक सिद्ध होते हैं

उपर्युक्त के आधार पर आप अनुमान लगा सकते हैं कि यह वृहत ग्रंथ न केवल गुजरात के इतिहास के लिए अपितु गुजरात के पड़ोसी राज्यों और भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास के लिए एक महत्वपूर्ण साधन का काम देता है ।

16.13 अभ्यासार्थ प्रश्न :

i. रासमाला साहित्य की विश्व वस्तु का विश्लेषण कीजिये ।
ii. रासमाला साहित्य का ऐतिहासिक महत्व अंकित कीजिये ।

16.14 संदर्भ ग्रंथ

रासमाला के मूल लेखक अलेक्जेण्डर फार्बस ने यह ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा, जिसका हिन्दी रूपान्तरण और सरस शैली में सम्पादन श्री गोपाल नारायण बहुरा ने करके गुजरात के रासमाला साहित्य की ऐतिहासिक महत्ता को चार भागों में अध्येताओं के लिए उपलब्ध करवाएगा।

इकाई 17 –

भारतीय इतिहास एवं इतिहास लेखन का यूरोपीय मत

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 विलियम जोन्स के विचार

17.3 धर्मपरायण सास और इतिहास लेखन

17.4 उपयोगितावादी इतिहासकार जेम्स मिल के विचार

17.5 एल्फिंस्टोन का मत

17.5 भारत के प्रान्तीय इतिहास के कुछ लेखक

17.7 1850 के उपरांत यूरोपीय इतिहासकारों का अध्ययन एवं लेखन

17.8 निष्कर्ष

17.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.0 उद्देश्य :

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको भारतीय इतिहास और इतिहास लेखन पर यूरोपीय दृष्टिकोण के संबंध में संक्षिप्त जानकारी देना है । इस इकाई के अध्ययन में हमने कुछ प्रमुख इतिहासकारों के विचारों की विवेचना की है ।

17.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत में ऐतिहासिक शोध की नीवं प्रसिद्ध Orientalist सर विलियम जोन्स ने 1784 में एशियाईटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना करके की थी । आधुनिक भारत में यूरोपीय इतिहासकारों ने सर्वप्रथम प्राचीन काल की आलोचनात्मक अध्ययन और पुन: रचना प्रारम्भ की । प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन के क्षेत्र में सर विलियम जोन्स निश्चित रूप से मार्ग दर्शक थे ।

17.2 विलियम जोन्स के विचार :

जोन्स और उनके सहकर्मियों ने हिन्दु संस्कृति तथा सभ्यता की भूरि – भूरि प्रशंसा की थी । नि:सन्देह जोन्स एक प्रसिद्ध Orientalist थे, किन्तु इसका मतलब यह नहीं था कि वह भ्रांत धारणा और राष्ट्रीय गर्व से मुक्त थे । भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करके उनकी अन्तिम अभिलाषा यह थी कि भारत में अंग्रेजी स्वार्थों की हानि न हो । भारतीय संस्कृति की परम्परायें और रीति–रीवाजों की रक्षा करना अन्त में ब्रिटेन के स्वार्थ के अनुकूल होगा । फिर भी, प्राचीन भारतीय संस्कृति पर सहानुभूतिपूर्ण विचार करके जोन्स ने हमारे देश की गौरवपूर्ण अतीत के बारे में शिक्षित करवाया । यह हमारे संस्कृति विरासत को गर्व करने के लिए प्रेरित किया जो भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में एक सहायक साधन थी ।

17.3 धर्मपरायण साम्राज्यवाद और इतिहास लेखन :

विलियम जोन्स के काल में ईसाई धर्मोपदेशकवाद (Evangelicalism) का भी जन्म हुआ । चार्ल्स ग्रान्ट इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रतिनिधि थे । उन्होंने धर्मपरायण साम्राज्यवाद (moral imperialism) का समर्थन किया । भारतीय इतिहास में उन्होंने ऐसा कोई लक्षण नहीं देखा जिसमें धर्म ने लोगों को प्रगतिशील बनाने के लिये प्रोत्साहित किया हो । उनके अनुसार हिन्दु धर्म सामाजिक और बौद्धिक उन्नति के मार्ग में अवरोधक थी । उनके विचार में ईसाई धर्म का प्रवेश कराने से ही भारत में सामाजिक और राजनीतिक सुधारों को स्थिरता मिल सकती है ।

17.4 उपयोगितावादी इतिहासकार जेम्स मिल के विचार :

भारतीय इतिहास ले खन की परम्परा जो सर विलियम जोन्स ने शुरू की थी, 19 वीं सदी में जेम्स मिल के हाथों द्वारा गहरा आघात पहुंचा । मिल एक उपयोगितावादी इतिहासकार (Utilitarian historian) थे । वह (history of British India) के रचयिता थे । मिल निश्चित रूप से जोन्स और उनके सहकर्मियों के मत को खंडन करना चाहते थे । मुख्य रूप से मिल ने जोन्स को अपना प्रधान विरोधी माना । आधुनिक भारत में इतिहास लेखन के विकास में मिल का महत्वपूर्ण योगदान रहा । उन्होंने अपने विचारों का ऐसा नमूना प्रस्तुत किया जो माऊंट स्टुअर्ट एल्फिंस्टोन के History of India के प्रकाशित होने के उपरान्त भी प्रचलित रहा। इन दोनों लेखकों के प्रति ध्यान देना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उनके धारणा मनोभाव और उद्देश्य का आधुनिक भारत में इतिहास लेखन के क्रमिक विकास में एक महत्वपूर्ण चरण है। मिल तथा एल्फिंस्टोन के प्रवत्ति और दृष्टिकोण में काफी भिन्नता थी ।

जेम्स मिल ने History of British India लिखना प्रारम्भ 1806 में किया और 1817 में समाप्त किया । ब्रिटेन में इस पुस्तक ने भारी प्रसिद्धि प्राप्त की । कुछ वर्ष बाद इस किताब की प्रशंसा करते हुये, मैकाले ने इंग्लैण्ड के कॉमन्स सभा में कहा कि अंग्रेजी भाषा में गिबन के (Decline and fall of the Roman empire के बाद ये सबसे श्रेष्ठ ऐतिहासिक कृति है । मिल की किताब समकालीन अंग्रेजी विचार का आधार बना कि किस प्रकार भारतीयों पर शासन करना चाहिये ।

अपनी कृति में मिल ने अपने मित्र Heremy Benthem के greatest happiness of the number सिद्धान्त का प्रचार किया । मिल के प्रस्तावनानुसार यदि भारत के राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक प्रणाली, सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक जीवन में पश्चिमीकरण लाई जाये, तो उससे भारत अत्याधिक लाभान्वित होगा । मिल ने प्राचीन भारतीय सभ्यता को कलुषित बताया । इसके विपरीत भारत में मुस्लिम सभ्यता काफी विकसित थी । मिल की उपयोगितावादी सिद्धान्तों के प्रचार से. भारत में साम्राज्यवादी विचारों का विकास हुआ और भविष्य में अंग्रेजी इतिहास लेखन पर गहरा प्रभाव पड़ा । इसके अतिरिक्त मिल ने शासक और शासितों के बीच खाई उत्पन्न कर दी । अन्त में भारत में मुस्लिम शासन की उपलब्धियों की प्रचुर प्रशंसा करके और प्राचीन भारतीय सभ्यता की निन्दा करके, मिल ने भारत में दो सम्प्रदाओं के मध्य आपसी विरोध और संघर्ष का बीजारोपण कर दिया । यह भविष्य में अंग्रेजों

की फूट डालों और राज करो की नीति कि अग्रदूत बन गई जो अंग्रेज शासकों के लिये अपनी भारतीय साम्राज्य को दृढ़ता से पकड़ रखने में सहायक सिद्ध हुई ।

मिल की कृति में इतिहास की दृष्टि से अनेक कमियाँ थी । सामान्य रूप से जातीय प्रांत, एक तरफा झुकाव और विषय में अज्ञानता' इस ग्रन्थ का खास दोष है । इंग्लैण्ड में बैठकर भारत तथा भारतवासियों पर अपना फैसला देना ऐतिहासिक सच नहीं हो सकता ।

17.5 एल्फिंस्टोन का मत :

एल्फिंस्टोन ने History in India में प्राचीन और मध्यकालीन भारत का इतिहास लिखा । भारत में एल्फिंस्टोन का विस्तृत अनुभव होने के कारण उन्होंने भारत के इतिहास को सोच और तर्क से लिखा । उनके अनुसार एक इतिहासकार अपने विवरण में काल्पनिक तथा मन गढ़ंत बाते न लिखें बल्कि तथ्यों का वर्णन करें । उन्होंने इतिहास और कल्पित कथा के बीच भेद करने को बताया ।

यद्यपि एल्फिंस्टोन ने भारत के इतिहास में कुछ अवनति के उदाहरण देखे, फिर भी उन्होंने सोचा कि भारत एक उन्नतिशील सभ्यता थी जहां विद्या का आदर किया जाता था, धर्मपरायणता (Piety) प्रचलित थी और सामान्य जीवन सीधा–सादा होते हुये भी उद्धत नहीं था । एल्फिंस्टोन ने मिल के भारत के प्राचीन सभ्यता के वृतान्त को झूठा बताया । इसलिये एल्फिंस्टोन की कृति मिल की प्राचीन भारतीय इतिहास के विश्लेषण का प्रत्युत्तर था ।

एल्फिंस्टोन के सम्बन्ध में हमारा विवेचना अपूर्ण रहेगा जब तक हम उनके History of India नामक पुस्तक लिखने का उद्देश्य का परीक्षण न कर लें । उन्होंने अंग्रेज प्रशासकों को चेतावनी देनी चाही कि भारत पर राज्य पाश्चात्य भावना से नहीं अपितु यहां के नागरिकों की भावना से करनी चाहिये । इससे भारत में अंग्रेजी शासन को स्थिरता मिल सकती है ।

एक प्रशासनिक इतिहासकार होने के नाते वह साम्राज्यवादी विचारधारा से मुक्त तो नहीं हो सकते थे, ले किन फिर भी एक वास्तववादी की तरह उन्होंने उपरोक्त विचारधारा को दबी और चतुर शब्दों में प्रस्तुत किया ।

17.6 भारत के प्रान्तीय इतिहास के कुछ लेखक :

19 वीं सदी के प्रथम पचास वर्षों में मिल और एल्फिंस्टोन के साथ–साथ अनेक विदेशी इतिहासकारों ने भारत के प्रान्तीय इतिहास का अध्ययन बड़े उत्साह से प्रारम्भ किया । इनमें सिक्खों के इतिहास रचयिता के रूप में जोसफ डेवी कनिंगघम को प्रमुख प्राथमिकता देनी चाहिये । कनिंगघम आधुनिक इतिहास लेखक विधि से परिचित थे । अधिकांश घटनाओं के विवरण को उन्होंने पादटीका (footnote) देकर प्रमाणिक बनाया । उन्होंने सहायक स्रोतों कार प्रयोग थी भरपूर किया ।

उनके विपरीत जेम्स टॉड ने इतिहास के माँगों को पूरा नहीं किया । इसलिये कनिंगघम की तुलना में टॉड अधीनस्थ स्थान रखते हैं । टॉड की Annals and Rajasthan में तथ्यों और कथाओं का मिलन है जो एक इतिहासकार को बड़ी सावधानी तथा समझदारी से पढ़ना चाहिये । टॉड राजस्थान में अंग्रेजी शक्ति का विस्तार देखना चाहते थे ।

इनके अलावा ग्रान्ट डफ ने 1826 में मराठों का इतिहास लिखा तथा मार्शमैन और स्टरलिंग ने क्रमश: से बंगाल तथा उड़ीसा का इतिहास लिखा ।

इस प्रकार हम देखते है कि विदेशी इतिहासकारों ने सर्वप्रथम प्राचीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन किया । धीरे– धीरे उन्होंने अपने अध्ययन के क्षेत्र का विस्तार करते हुये मध्यकालीन भारत का इतिहास और प्रादेशिक इतिहास को अपना विषय बनाया ।

अलेक्जेण्डर डॉव से जोसफ डेवी कनिगंघम के समय तक ऐतिहासिक कृतियों की रचनाओं में काफी विकास हुआ । उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि 1784 से 1850 के मध्य सर विलियम जोन्स, जेम्स मिल तथा माऊँट स्टुअर्ट एल्फ़िंस्टोन भारतीय इतिहास लेखन के क्षेत्र में अग्रणी रहे ।

17.7 1850 के उपरान्त यूरोपीय इतिहासकारों का अध्ययन एवं लेखन:

1850 के उपरान्त जिन विदेशी इतिहासकारों ने भारत पर लिखा वह 'अधिकतर प्रशासन अथवा उच्च सैनिक अधिकारी थे । इसलिये वह साम्राज्यवादी भावना से प्रभावित थे । ऐसे इतिहासकार आधुनिक इतिहास लेखन विधि से अवश्य परिचित थे । परन्तु बदकिस्मती की बात यह है कि उन्होंने भारत के इतिहास को न्याय प्रियता से परीक्षण नहीं किया । यद्यपि इन इतिहासकारों की उपलब्धियों को टाल देना अनुचित होगा फिर भी वह अवश्य कहना होगा कि भारत के इतिहास को उन्होंने जिस ढंग से लिखा उसमें उनकी औपनिवेशिक स्वार्थ निहित था ।

प्रशासनिक इतिहासकारों में सबसे ज्यादा प्रसिद्धि विन्सेन्ट स्मिथ को मिली । अपनी कृति Early History of India में उन्होंने जोरदार शब्दों में घोषणा की वह प्राचीन भारत का इतिहास न्यायिक ढंग से प्रस्तुत करेंगे । उन्होंने कहा कि एक इतिहासकार का कर्तव्य है कि वो सच को झूठ से और निश्चित को अनिश्चित से अलग करें । प्रत्येक जॉचकर्त्ता को यह' समझना चाहिये कि वो न्यायाधीश के पद पर काम कर रहा है । परन्तु स्मिथ का भारत के प्रति दृष्टिकोण निष्पक्षतापूर्ण नहीं था ।

स्मिथ भारत में अंग्रेजी शासन को सुदृढ़ बनाने में विश्वास रखते थे । फिर भी भारत के इतिहास के विभिन्न पहलुओं के पुन: रचना में हम स्मिथ के योगदान की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं । Early history of India के अलावा स्मिथ Asoka, the Buddhist Emperor of India, Oxford history of India, Akbar the great Moghul, history of Fine Art in India and Ceylon के भी रचयिता थे । उपरोक्त ग्रन्थों के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि स्मिथ ने इतिहास जानने के भिन्न–भिन्न साधनों का परीक्षण बड़ी मेहनत से किया । इसलिए उनकी कृतियाँ शोधात्मक हैं । इसके अतिरिक्त स्मिथ ने अपनी पुस्तकों को सरल एवं स्पष्ट शैली में लिखा । एक पश्चिमी इतिहासकार होने के नाते स्मिथ ने हमेशा पाश्चात्य सभ्यता को भारतीय सभ्यता से अधिक विकसित तथा यहाँ के महत्वपूर्ण कला कृतियों और साहित्यिक रचनाओं को इससे प्रभावित बताया । स्मिथ की पुस्तकों ने हमारे इतिहासकारों

को प्रेरित किया कि वो उनके विचारों का पुन: मूल्यांकन करें और पाठकों के सामने भारत के इतिहास को सही रूप में प्रस्तुत करें ।

इसी कड़ी में सर विलियम विल्सन हन्टर का नाम हम अवश्य लेंगे । वह जेम्स मिल के भारत के इतिहास से संबन्धित विचारों के कटु आलोचक थे । हन्टर अपने समय के एक श्रेष्ठ इतिहासकार थे । उन्होंने Annals of Rural Bengal की रचना की तथा Imperial Gazetteer of India 14 खण्डों में तैयार किया । उनके निर्देशन में Rulers of India Series समकालीन इतिहासकारों के द्वारा लिखा गया । वह भारत में अंग्रेजी शासन को न्यायोचित ठहराना चाहते थे लेकिन साथ–साथ उन्होंने अंग्रेज प्रशासकों को यह चेतावनी दी कि वो शासन भारतीयों का शोषण करके नहीं अपितु उनके सहयोग से करें । इससे ही भारत में अंग्रेजी शासन को लोकप्रिय बनाया जा सकता है ।

स्मिथ और हन्टर के साथ–साथ जिस विदेशी इतिहासकार ने भारत के आर्थिक इतिहास के अध्ययन में प्रसिद्धि हासिल की उनका नाम था विलियम हौसिन मोरलैण्ड । वह लगभग 25 वर्ष भारत में आई. सी. एस. में सेवारत रहें इसमें से अधिक समय तक उनका सम्बन्ध कृषि एवं मालगुजारी विभागों से रहा । इसलिये उनकी रूचि भारत की आर्थिक समस्याओं तथा अंग्रेज प्रशासकों की भारत में आर्थिक नीतियों पर गम्भीर रूप से अध्ययन करने की ओर अग्रसर हुई । शुरू में उन्होंने तीन मैनयुअलों का संकलन किया – (i)the Agriculture of the united provinces (1904), (ii) The Revenue Administration of the united Provinces (1911), and (iii) Notes on the Agriculture conditions and problems of the Uni. Pri. (1913) इसके तुरन्त बाद उन्होंने मध्यकालीन भारत का इतिहास लिखने की योजना बनाई । बड़े उत्साह के साथ उन्होंने इस विषय पर पढ़ना शुरू किया । उन्होंने सफलतापूर्वक फारसी, फ्राँसीसी, पुर्तगाली तथा डच भाषाओं का अध्ययन इस उद्देश्य से किया जिससे इन भाषाओं में जो स्रोत उपलब्ध थे, उनको वह पढ़ सके । उनकी पुस्तक The Agrarian system of moslem India जो 1929 में प्रकाशित हुई तो उनके पाण्डित्य का परिचायक थी । यद्यपि हम उनके लेखों में भारतीय सिविल सर्विस के एक सदस्य की आवाज सुनते हैं, फिर भी मोरलैण्ड अपने समय के एक जाने माने आर्थिक इतिहासकार थे, हम आज तक अस्वीकार नहीं करते हैं । उनकी पुस्तकों ने भारतीय विद्वानों को प्रेरित किया कि वो मध्यकालीन भारत के आर्थिक इतिहास का अध्ययन विस्तारपूर्वक करें ।

भारतीय दर्शन, चिन्तन, धर्म और साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र में जिस जर्मन विद्वान का नाम हम हमेशा श्रद्धा से लेते हैं, वह है मैक्स मूलर । उनका भारत से असाधारण प्यार था जो उन्होंने अपने मशहूर पुस्तकों में व्यक्त किया । मैक्स मूलर की प्रख्यात पुस्तकें हैं - **Chips from German workshop, The six systems of Indian Philosophy, The science of Thought, The Science of Mythology and The Sacred books of the East** इनके अलावा उन्होंने राजा राम मोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती पर जीवनी लिखी । मैक्स मूलर कभी भी भाव में बह नहीं गये और न ही वह अन्य

पश्चिमी विद्वानों की भाँति सोचते थे कि प्राचीन भारतीय साहित्य और संस्कृति का जो भी विकास हुआ उसमें यूनानी सभ्यता का योगदान रहा ।

मैक्स मूलर के समकालीन थे जे. पी. मूलर । वह भी एक जर्मन थे । भारतीय पुरातत्व, अभिलेख, भाषा विज्ञान, साहित्य इत्यादि के अध्ययन में वह इतिहास के पन्नों में अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं ।

परसी ब्राऊन, ई. बी. हैवल और जेम्स फ्रगूसन ने बड़े अभिरूचि से प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य कला और चित्रकला का अध्ययन किया । उन्होंने देश के महत्वपूर्ण कला कृतियों का न केवल वर्णन किया बल्कि उन्होंने अपनी पुस्तकों को उन कला कृतियों के खाकों और चित्रों से अलंकृत करके उत्तम बनाया ।

17.8 निष्कर्ष :

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आधुनिक भारत में ऐतिहासिक शोध की नींव यूरोपीय विद्वानों ने रखी । 1947 के बाद भारतीय इतिहासकारों ने भारत के इतिहास का अधिक परिमाण में शोध किया है । यूरोपीय इतिहासकारों के बहुत से विचारों का खण्डन किया गया है । कोई इतिहासकार इतिहास के विषय में अपना अन्तिम निर्णय नहीं दे सकते क्योंकि इस बदलते जगत में विचारों का हमेशा परिवर्तन होता रहता है । इसलिये पश्चिमी इतिहासकारों पर आक्षेप लगाना न्यायोचित नहीं होगा । भारतीय इतिहास के अध्ययन तथा इतिहास लेखन विधि के उन्नति में यूरोपीय विद्वानों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता ।

17.9 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. धर्मपरायण साम्राज्यवाद और इतिहास लेखन की व्याख्या कीजिये?
2. भारत के प्रान्तीय यूरोपीय इतिहासकारों के ऐतिहासिक उद्देश्य एक मत को स्पष्ट कीजिये?
3. 1850 के उपरांत यूरोपीय इतिहासकारों का विवरण दीजिये?

इकाई 18
स्वातंत्रय–पूर्व भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन
आर.सी. दत्त एवं दादाभाई नौरोजी

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 स्वातंत्रय–पूर्व भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन
18.3 आर.सी. दत्त–उनके विचार
18.4 दादाभाई नौरोजी–उनके विचार
18.5 राष्ट्रीय ऋण
18.6 भू– राजस्व
18.7 उद्योग, वाणिज्य तथा कृषि का ह्रास
18.8 यातायात के साधन (रेलवे, सड़क तथा सिंचाई) की असंतुलित व्यवस्था
18.9 सारांश
18.10 बोध प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि किस तरह यूरोपीय विद्वानों ने इतिहास–लेखन की आधुनिक पद्धति भारत में प्रारम्भ की । किस तरह उन्होंने भारतीय जीवन की त्रुटियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया और भारत को हर क्षेत्र में पश्चिमी राष्ट्रों की तुलना में न्यून सिद्ध किया । किस तरह इसके प्रतिरोध में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक इतिहास–लेखन के आधार पर ही राष्ट्रवादी भारतीय इतिहासकारों का उदय हुआ और उन्होंने बहुत जोर से भारतीय पक्ष का प्रतिपादन किया और प्रत्येक दृष्टिकोण (सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक) से भारतीय जीवन की श्रेष्ठता को सिद्ध किया । इन इतिहासकारों में ऐसे भी कुछ थे, जिन्होंने आर्थिक दृष्टि से अंग्रेजी शासन को भारत के लिए अत्यन्त अनिष्टकारी सिद्ध किया। इन विद्वानों में प्रमुख स्थान दादाभाई नौरोजी और आर. सी. दत्ता का है । इन विद्वानों की दृष्टि में अंग्रेजी शासन के तथाकथित लाभ आर्थिक–शोषण के कारण ऋणात्मक हो जाते हैं ।

18.1 प्रस्तावना :

इस इकाई में भारत में राष्ट्रवादी इतिहासकारों के उदय की परिस्थितियों का सिंहावलोकन होगा और किस तरह यूरोपीय नस्लवाद के विपरीत भारतीय जीवन और संस्कृति की श्रेष्ठता को भारतीय इतिहासकारों ने सिद्ध करने की कोशिश की, इस पर प्रकाश डाला जाएगा। इसी संदर्भ में प्रसिद्ध लेखक आर. सी. दत्ता और दादाभाई नौरोजी के आर्थिक विचारों

पर विशेष विचार किया जायेगा और यह दिखलाया जायेगा कि किस प्रकार आधुनिक भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद (इकोनोमिक नेशनेलिज्म) का उदय हुआ ।

18.2 स्वातंत्र्य–पूर्व भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन :

पाश्चात्य विद्वानों का ऐसा मत है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास – बोध नहीं था । यह तो विवादास्पद हो सकता है किन्तु यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भारत में ऐसे बहुत से इतिहास लेखक हुए जिन्होंने इतिहास की उत्कृष्ट पुस्तकें लिखी हैं, किन्तु लेखक भी 19 वीं शताब्दी के यूरोपीय इतिहास–लेखन की शैली से भिन्न थे । कहना नहीं होगा कि जेम्स मिल सेलेकर, इलियन्ट, डासन, मेन, स्टीफेन, ह्वीलर और दूसरे यूरोपीय इतिहासकार अनवरत भारतीय जीवन और संस्कृति पर कीचड़ उछालते रहे । इस आक्रमण के विरूद्ध पहले तो भारतीयों की प्रतिक्रिया रक्षात्मक रही । किन्तु पीछे भारतीय मस्तिष्क ने इस चुनौती का उत्तर दो तरीकों से दिया । पहले तो इसने धार्मिक उत्साह से अपने अतीत की खोज की, स्रोतों का पता लगाया, नए तथ्यों के ज्ञान के भण्डारों को खोला, पाली, प्राकृत और संस्कृत तथा दूसरी भाषाओं को सीखा और इस तरह इतिहास के अपने ज्ञान को विस्तृत किया । फिर अपने नए ज्ञान के अस्त्रों से इसने पश्चिम द्वारा भारतीय संस्कृति पर लगाए गए आक्षेपों को निरस्त कर दिया । ऐतिहासिक विचार से इस विधि के अनुसार भारतीय मस्तिष्क का दीक्षित होना एक मिला–जुला वरदान ही सिद्ध हुआ । एक और तो इसने भारत के अति प्राचीन अतीत के विस्तृत ज्ञान–क्षेत्र का द्वार खोल दिया, जिसमें मानव जीवन के प्रत्येक विभाग में असीम विविधता और विचार की गहरायी थी, जो स्वयं में भारतीय मस्तिष्क को राष्ट्रीय गौरव और विचार की गहरायी थी, जो स्वयं में भारतीय मस्तिष्क को राष्ट्रीय गौरव और उत्साह से अभिमत कर देने के लिए पर्याप्त थी; किन्तु साथ–ही–साथ इससे भारतीय मस्तिष्क ऐसे तार्किक और चुनौती भरी स्थिति में आ गया था, जिससे वह यूरोपीय लेखकों के तर्कों का समुचित उत्तर दे सके । दुर्भाग्य से ज्ञान के इस नवार्जित कोष का लाभकारी प्रभाव बहुत हद तक इस मनोस्थिति से कम हो गया जिससे भारतीय अपने अतीत का मूल्यांकन रंगीन चश्मों से करने लगे । यदि पश्चिमी विद्वानों को भारत के अतीत में प्रत्येक बुराई ही दृष्टिगोचर हुई तो भारतीय विद्वानों को अपने देश के अतीत में केवल अच्छाई ही दीखने लगी ।

भारतीय इतिहास लेखन के प्रारम्भ में ही इस तरह की प्रवृत्ति बड़ी खतरनाक सिद्ध हुई, और भारतीय मस्तिष्क अपने को इसी तरह के बौद्धिक प्रयास में प्रसन्न मानने लगा जिसमें व्यक्ति झुकाव की ही प्रधानता थी । अब वैज्ञानिक इतिहास का मार्ग जो उचित किन्तु कठिन था वह अब अवरूद्ध हो गया । अनासक्त प्रवृत्ति, संतुलित निर्णय, उचित दृष्टिकोण और वस्तुनिष्ट तथ्य का बलिदान उन राष्ट्रवादी इतिहासकारों से हुआ जो पश्चिमी विद्वानों से संघर्ष के लिए उद्धत थे । इतिहास का व्यवहार अब लोग कुछ दूसरे उद्देश्यों के लिए भी करने लगे । इसे समाज सुधार का एक अस्त्र बनाया गया, विदेशियों के निष्कासन के लिए इसे एक राजनीतिक साधन के रूप में अपनाया गया, कुछ लोगों ने इसे राष्ट्रीय एकता के उन्नयन के लिए उपयोग में लाया और कुछ लोगों ने पृथकतावादी उद्देश्यों के लिए व्यवहार में लाया । उदाहरण के लिए प्राचीन संस्कृति के बहुत पुरानेपन को सिद्ध करने के लिए पश्चिमी विद्वानों

द्वारा निश्चित तिथि से बहुत पहले रखा गया । उदाहरण के लिए ज्योतिष पर आधारित तथ्यों को लेकर बाल गंगाधर तिलक ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि ऋग्वेद का प्रणयन 8000 वर्ष पहले हुआ था उसी तरह महाकाव्यों, पुराणों और दूसरी परम्पराओं को भी पश्चिमी द्वारा स्वीकृत तिथि से बहुत पहले सिद्ध किया जाने लगा । के. पी. जायसवाल जैसे विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया कि यूरोप से पहले भारत में लोकतांत्रिक और स्वशक्ति संस्थाओं का विकास हो चुका था । इस तरह के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं । आर. के. मुखर्जी ने अपनी पुस्तक, भारत की मौलिक एकता **(दि फन्डामेंटल यूनिटी ऑफ इण्डिया)** में यह दिखाने की कोशिश की कि बाह्य विविधताओं के रहते हुए भी भारत में मौलिक एकता थी । उनकी दूसरी पुस्तक, भारतीय जहाजरानी का इतिहास और नाविक कार्यकलाप **(इण्डियन शिपिंग एण्ड मेरीटाइम एक्टीविटी)** में भी ऐसे ही सत्य का प्रतिपादन किया गया है । ऐसे सैकडों उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

इस काल में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रकाश आर्थिक इतिहास पर दिया गया है । इस क्षेत्र में अनुसंधान अधिक इस बात पर केन्द्रित रहा है कि अंग्रेजों के आर्थिक जीवन की खामियों को विशेष उजागर किया जाय जैसे – आर्थिक शोषण, भारत का द्ररिद्रीकरण, भारतीय व्यापार और उद्योग का विनाश, बहुत अधिक खर्चीला केन्द्रित शासन, सेना पर और देश के बाहर आक्रमणों पर अत्यधिक खर्च और दूसरे बहुत से साधन जिनके द्वारा भारत की जनता का निर्मम शोषण हुआ ।

18.3 आर. सी. दत्ता एवं उनके विचार :

आर्थिक इतिहास की चर्चा आते ही दो ऐसे विद्वानों की चर्चा आवश्यक है जिन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक लूट का बड़ा ही विशद् और सरकारी आँकडों पर आधारित अध्ययन किया है, इनमें एक तो हैं आर. सी. दत्त और दूसरे हैं – दादाभाई नौरोजी ।

आर. सी. दत्ता जो भारतीय नागरिक सेवा (आई. सी. एस.) के सदस्य थे । वे प्रशासन के साथ–साध देशभक्त भी थे, ने बड़ा ही मार्मिक चित्र उपस्थित किया है । आर्थिक इतिहास के सिवा उनकी ये कुछ पुस्तकें हैं – जैसे **कल्चरल हेरीटेज ऑफ बंगाल, सिविलाइजेशन इन एनसियेंट इण्डिया,** जिसमें उन्होंने पश्चिमी विद्वानों के बहुत से संदेहों को दूर करने की चेष्टा की है । उन्होंने अंग्रेजी पद्य में रामायण और महाभारत का अनुवाद किया है । भारतीय नागरिक सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद वे कुछ समय तक लंदन विश्वविद्यालय में इतिहास के व्याख्याता भी थे और उन्होंने दो जिल्दों में ब्रिटिश शासन के अंदर भारत के आर्थिक इतिहास को लिखा है – **इण्डियन अण्डर अरली ब्रिटिश रूल** (1757–1837) जिल्द – 11, इन दि विक्टोरियन एज (1837–1900) आर. सी. दत्ता ने ब्रिटिश साम्राज्य की चमक के भीतर भारत की गरीबी और विपदा का दृश्य देखा जिस समय ब्रिटिश शासन के दूसरे भागों में विकास और समृद्धि के चिन्ह थे उस समय (1897) भारत एक बड़े भयानक अकाल से वीरान हो रहा था और ये अकाल 1898 तक चलता रहा । 1899 में कुछ ठहराव आया किन्तु 1900 में और भी भयानक अकाल पड़ा जो तीन वर्षों तक रहा । भारत और साम्राज्य के दूसरे भागों के बीच बढ़ती हुई आर्थिक खाई समय के साथ बढ़ती ही गई । कनाडा और दूसरे उपनिवेशों में

प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आमदनी 48 पौंड थी । ये ब्रिटेन में यह आमदनी 2 पौण्ड थी । सरकारी आँकडों के मुताबिक भारत में यही आमदनी 2 पौण्ड थी । दत्त को ऐसा लगा कि साम्राज्य की 576 जनसंख्या (जो भारत की थी) की बढ़ती हुई गरीबी और पतन पर साम्राज्य की एकता नहीं हो सकती थी । अकाल के वर्षों के अलावा भी भारतीय जनता की गरीबी सामान्य वर्षों में भी बढ़ ही रही थी । उनके अनुसार भारत में भोजन की कमी नहीं थी । अगर किसी विशेष भाग में अकाल भी पड़ता था तो वहां दूसरे भागों से पर्याप्त भोजन जा सकता था । मगर कठिनाई तो यह थी कि जनता इतनी साधनहीन थी कि उसके पास कोई बचत नहीं थी और इसलिए जब कभी दुर्भिक्ष पडता था तो लोग पड़ोस के क्षेत्रों से भोजन खरीदने की स्थिति में नहीं थे । दत्त को भारतीय जीवन का प्रशासनिक अनुभव था और इसके आधार पर वह कह सकते थे कि भीषण से भीषण अकाल के समय भी अगर लोगों में क्रय शक्ति रहती तो वे भोजन खरीद सकते थे । प्रशासनिक अनुभव और सरकारी आँकडों के अध्ययन के आधार पर दत्त यह जानते थे कि ब्रिटिश शासन से भारत में शांति तो स्थापित हुई, किन्तु इस शासन से भारत के राष्ट्रीय धन में कोई विकास या विस्तार नहीं हुआ । भारत में न तो वाणिज्य और उद्योग की दशा सुधरी और जिसका विशुद वर्णन उन्होंने – इण्डियन अण्डर अर्लो ब्रिटिश रूल (1757–1837) में किया । ब्रिटेन के हित में सरकार ने भारतीय उद्योगों को अंग्रेज उद्योग पतियों के लिए नष्ट किया । भारतीय माल का यूरोप में आयात बहुत अधिक चुंगी लगा कर खत्म कर दिया गया और ब्रिटिश माल का भारत के लिए निर्यात अत्यधिक कम चुंगी लगा कर बढ़ाया । प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की वाणिज्यिक नीति यह थी कि भारत ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चा माल पैदा करे और ब्रिटिश उद्योगों द्वारा तैयार माल की खपत भी भारत में हो । इस तरह ब्रिटिश उत्पादकों ने राजनीतिक अन्याय का उपयोग कर भारत को दबाये रखा और अंत में उसका गला ही घोंट दिया । महारानी विक्टोरिया के 1887 में गद्दी पर बैठने के समय यह बुराई तो हो चुकी थी फिर भी शोषण की नीति में किसी तरह की ढिलाई नहीं हुई और लगातार भारत के बदन से खून खींचने की प्रक्रिया जारी रही । 1858 तक भारत वर्ष किसी तरह का उद्योग चला ही नहीं रहा था, और अब भारत के जीवनयापन का एकमात्र साधन कृषि ही रह गया । भारतीय जीवन की इस बढ़ती हुई विसंगति को समझने के लिए दत्त ने भारतीय आर्थिक जीवन का बड़ा ही विशुद्ध अध्ययन किया और उन्होंने भारतीय भू–राजस्व व्यवस्था, कृषि को अवनति, उद्योगों की अवनति, भारत के बढ़ते हुए राष्ट्रीय ऋण, अंग्रेजी सरकार की भारत के आर्थिक शोषण की नीति और भारत की गिरती हुई आर्थिक अवस्था का बड़ा ही तर्कपूर्ण और विशुद्ध विश्लेषण किया जिसका विशेष अध्ययन हम आगे चल कर करेंगे ।

18.4 दादाभाई नौरोजी एवं उनके विचार :

भारत की आर्थिक दशा का दत्त जैसा ही मार्मिक और करूण चित्र खींचने वाले दादाभाई नौरोजी थे । साठ वर्ष की उम्र में दादाभाई नौरोजी कांग्रेस के स्थापकों में से एक थे; और किसी से भी अधिक उन्होंने भारतीय एकता के विकास के लिए काम किया और भारतीयों को अपने हित विरासत, आदर्शों और उद्देश्यों के प्रति सजग किया । इन्होंने इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में भारतीयों के हित के लिए काम किया, और अंत में कलकत्ता कांग्रेस (1906) के

अध्यक्ष पद से यह घोषित किया कि स्वराज्य ही कांग्रेस का ध्येय हैं । भारतीय राष्ट्रीयता को उनकी सबसे बड़ी देन थी, कि उन्होंने सरकारी शोषणकारी, विभाजन को प्रोत्साहन देने वाली और आर्थिक दृष्टि से नाश कर देने वाली नीति का अपने विभिन्न भाषणों, कागजातों और लेखों के द्वारा इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में पर्दाफाश किया । इस तरह उन्होंने राज्य के वित्तीय आधारों को उखाड़ कर साम्राज्य के नैतिक आधार को मर्मान्तक धक्का दिया और इसकी प्रतिष्ठा छिन्न–भिन्न हो गयी । इस तरह साम्राज्य की प्रतिष्ठा के ढह जाने से अंतत: इसका विनाश हो गया । अपनी महान कृति में नौरोजी के विचार संग्रहित है जिसका नाम हैं – **पोभर्टी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इण्डिया** केवल यह किताब ही दादाभाई नौरोजी को अमर बनाने के लिए पर्याप्त थी । मगर इससे उनकी देन बहुत अधिक है ।

उन्होंने भारत के हित का काम इंग्लैण्ड में लगातार प्रेस, प्लेटफार्म और पार्लियामेंट के जरिए किया । दादाभाई नौरोजी इग्लैण्ड की कामन समा के प्रथम भारतीय सदस्य थे (1892–1895) उन्होंने सदन में एक भारतीय लॉबी बनाने के लिए बहुत काम किया जिसने भारत के लिए बहुत कठिन कार्य किया । वे प्रोफैसर समाज सुधारक, विद्वान, अर्थशास्त्री, सांसद, मानवतावादी और सच्चे राष्ट्रभक्त थे । जो कोई भी उनके आर्शीवाद और परामर्श के लिए जाता था उसके वे मित्र दार्शनिक और मार्गदर्शक थे । जीवन के अंत तक वह मानसिक दृष्टि से और आत्मिक दृष्टि से उन्नयन करते रहे ।

इग्लैण्ड में पहुंचते ही दादाभाई नौरोजी ने इग्लैण्ड की जनता को यह शिक्षित करना प्रारम्भ किया कि भारत के प्रति उनका कितना महत्वपूर्ण दायित्व है । उन्होंने शीघ्र ही लंदन इण्डिया सोसाइटी की स्थापना की । फिर दादा भाई ने एक बड़ी संस्था कायम की जिसमें केवल भारतीय ही नहीं थे बल्कि ऐसे इंग्लोइंडियन थी थे, जिन्होंने भारतीय जनता के कल्याण में अपनी रूचि प्रदर्शित की थी । इस तरह सुप्रसिद्ध ईस्ट इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना शिक्षित भारतीयों के बीच भारत की कमर तोड़ गरीबी, घोर चिंता और अत्यधिक असंतोष का विषय था । सुरसा की तरह यह गरीबी दिनों–दिन मुँह बाये जा रही थी, और आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीयों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ । ऐसे लोगों में दादाभाई नौरोजी प्रथम प्रमुख भारतीय थे । जिन्होंने इस पर बहुत मेहनत की, और भारत तथा इंग्लैण्ड दोनों जगह लोगों के सामने आँकड़ों और वस्तुस्थिति के सही मूल्यांकन के द्वारा भारतीयों की घिनौनी गरीबी का दृश्य उपस्थित किया । इन्होंने गरीबी के मौलिक कारणों को ढूंढ निकाला, निर्भयतापूर्वक विदेशियों द्वारा भारत के प्रशासन के बुरे परिणामों को उजागर किया, और इनको दूर करने के लिए सुझाव दिया । विदेशी शासन के आर्थिक पहलू की उन्होंने वैज्ञानिक अध्ययन किया और तत्पश्चात जीवनभर इग्लैण्ड द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के विरूद्ध विचार किया । इन्होंने धैर्यपूर्वक सब आंकडों को जमा किया और इनके दुघर्ष तथ्यों और अकाट्य तर्कों ने उनके देशवासियों में और बहुत से अंग्रेजों के बीच भी अत्यधिक प्रभाव डाला । भारत में राजनीतिक चेतना को जगाने का श्रेय दादाभाई नौरोजी को ही है, जिससे विदेशी शासन के लिए बड़ा खतरा उपस्थित हो गया और भविष्य में भारत में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध संवैधानिक आन्दोलन के

लिए यही मुख्य मुद्दा हुआ । विचारों की इसी श्रृंखला को पीछे चलकर आर. सी. दत्त, विलियम डिग्वी (प्रोसेपरस ब्रिटिश इण्डिया) और दूसरों ने अपनाया।

27 जुलाई 187० को दादाभाई नौरोजी ने ईस्ट इण्डियना एसोसिएसन के सामने एक निबन्ध पढ़ा जिसमें प्राप्त आँकडों पर विस्तृत सोच विचार कर वे इन निदान पर पहुंचे कि ब्रिटिश भारत की जनता का प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति औसत आमदनी 40 शिलिंग थी । इस कठिन समस्या के जाँच पड़ताल और अध्ययन कि दिशा में यह उनका पहला ही कदम था । इस निबंध में और इसके आगे के लेखों में उन्होंने कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर ध्यान आकृष्ट किया, भारतीय शासन का अपने खर्च पर उचित देख–रेख कि कमी बहुत बड़ी बुराई थी । भारत के वित्तीय प्रशासन में एक दूसरी कठिनाई यह भी थी कि भारतीय वित्तीय सदस्य (इंडियन चान्सलर ऑफ दि एक्सचेकर) को दो स्वामियों की सेवा करनी पड़ती थी । जिसमें एक तो भारत में था दूसरा इग्लैण्ड में और चूंकि पिछला स्वामी ही सेवापरि होता था इसलिए इग्लैण्ड के स्वार्थ के सामने भारत के स्वार्थ कि बलि देनी होती थी । इसकी दूसरी बड़ी बुराई खर्चीला भारतीय प्रशासन था । जिसमें भारत के सभी भागों से नागरिक तथा सैनिक अफसरों का वर्ष के पहाड़ी निवासों पर भारी भरकम भीड़ एकत्रित होने पर अत्यधिक खर्च होता था । जिसके साथ ही साथ सेना पर निरन्तर बढ़ता हुआ खर्च भी था जो कुछ राजस्व का लगभग एक तिहाई था । सैनिक व्यय के महानियंत्रक ने थी यह कहा था कि सैनिक इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है जिसमें सेना इस तरह से गठित हुई हो अथवा जो इतनी खर्चीली हो ।

इस खर्चीले शासन और ढीले–ढाले वित्तीय निरीक्षण का यह अनिवार्य फल था कि बहुत कड़ा करावधान हो जिसका भार विशेष रूप से गरीबों पर पड़ता था । नौरोजी की यह मान्यता थी कि करावधान का जो मार कृषकों पर पड़ता था वह दूसरे वर्गों पर पड़ने वाले करावधान के भार से तुलना करने पर न्यायपूर्ण नहीं था । वह भू–राजस्व की वसूली के लिए जो यन्त्र थे, उससे भी संतुष्ट नहीं थे, क्योंकि यह सस्ता नहीं था । 40 शिलिंग प्रति व्यक्ति सालाना आमदनी तो किसी तरह से जीवन को बिताने के लिए थी और जहां कहीं इसमें अकाल का धक्का लगता था, तो लोगों को टिकने की ताकत भी नहीं थी, और लाखों आदमी मर जाते थे । भारतीय जनता को पीसने वाला यह सबसे बडा भार था । इसी घिनौनी आमदनी से इन्हें कर भी देना पड़ता था । इस तरह से दादाभाई भारत के – "आर्थिक शोषण" (इकोनोमिक ड्रेन) के अपने सिद्धान्त पर पहुंचे ।

उदाहरण के लिए दूसरे–दूसरे देश जो भी राजस्व वसूल करते थे उसका संपूर्ण राजस्व देश ही में रहता था, और लोक कल्याण पर खर्च होता था । इसलिए राष्ट्रीय पूंजी जिस पर देश का उत्पादन निर्भर करता था, में कोई कमी नहीं होती थी । दूसरी और विदेशी शासन के अंदर होने के कारण भारत में नियोजित वार्षिक 5 करोड़ पाउण्ड राजस्व से 1 करोड़ 20 लाख पाउण्ड या उससे भी अधिक प्रतिवर्ष इग्लैण्ड चला जाता था और इसलिए राष्ट्रीय पूंजी प्रतिवर्ष घटती जाती थी । इस तरह के बहुत से निबंध दादाभाई भारत की गरीबी पर पढ़ते रहे, और अंत में उनका संग्रह **प्रोभर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया** के नाम से प्रकाशित हुआ । इसका हिन्दी अनुवाद भी पीछे भारत में ब्रिटिश शासन का कच्चा चिट्ठा के नाम से हुआ । दादाभाई नौरोजी

ने ब्रिटिश शासन को जितना सुन्दर समझा था उसके आर्थिक जीवन के विश्लेषण पर उन्होंने उसको उतना ही घिनौना ओर कुरूप पाया । इसलिए उन्होंने इन विसंगतियों को दूर करने के लिए अपनी पुस्तक का नाम **"प्रोभर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया"** रखा । जिससे यह मालूम हो सके कि भारत की यह दुर्दशा अंग्रेजी शासन में नहीं हो सकती थी । शायद भारत के जनमानस में उस समय यह बात घर कर गयी थी । क्योंकि वर्तमान हिन्दी गद्य के उन्नायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जिनकी मृत्यु 1885 ई. में ही हुई थी, ने अपनी पुस्तक "**भारत दुर्दशा"** में दादाभाई नौरोजी से ही मिलती–जुलती भावना व्यक्त की है –

अंग्रेज़ राज सुख साज सजै सब भारी"

"पर धन विदेश चली जात एहै अति ख्वारी "

दादाभाई नौरोजी ने अधिकारियों से तथ्य और आकड़े जुटा कर यह सिद्ध किया था कि प्रतिवर्ष भारत अधिक से अधिक गरीबी के गर्त में डुब रहा था कि देश का प्रशासन ही बहुत अंश में उसके दुख के लिए उत्तरदायी था । दादाभाई ने ऐसे बहुत से आश्चर्यकारी तथ्यों का उद्घाटन किया । उनकी स्थापना यह थी कि अच्छे समय में भी ऐसे भोजन और कपड़े जो कैदी को जेल में भी मिलते थे इतनी भी पैदावार नहीं होती थी कि किसान उस तरह का भोजन भी पा सके और हम इन साधारण चीज़ों को तो छोड़ ही दें जिनकी आवश्यकता आनन्द और गम के मौकों पर होती थी अथवा इतनी बचत जो बुरे समय में भी काम आ सकती थी । दादाभाई ने जो कुछ भारत की आर्थिक जीवन की विषमता को उजागर करने के लिए किया उसका वर्णन एक छोटे से आलेख में नहीं हो सकता है ।

18.5 राष्ट्रीय ऋण अथवा लोक ऋण :

राष्ट्रीय ऋण अथवा लोक ऋण एक दूसरा मुद्दा था जिस पर भारतीय राष्ट्रवादी बहुत ही क्षुब्ध थे । देश के ऋण का मार 1869–61 में 94.56 करोड़ से बढ़कर 1901 –2 में 312 करोड़ रुपया हो गया था । इससे भारतीय करदाताओं पर बड़ा भारी बोझ आ गया था । मगर इसके वित्तीय पहलू से भी अधिक इसके नैतिक पहलू का घोर विरोध था । दत्त और दादाभाई नौरोजी दोनों ने ही इसके अनैतिकता की कड़ी आलोचना की थी । भारतीय लोक ऋण का अधिकांश भाग पूर्व में ब्रिटेन के विजय–युद्धों के कारण बढ़ा था भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जो युद्ध किये थे उनका खर्च, 1857 के विद्रोह का खर्च, कम्पनी के हाथ से ब्रिटिश सम्राट के हाथ भारतीय शासन के हस्तांतरण के समय कम्पनी के हिस्सेदारों को पूंजी देने का खर्च, अफगान और बर्मा युद्धों का खर्च और उसी तरह के दूसरे बहुत से खर्च भारत के खाते में डाल दिये गये थे और अधिकांशत: इग्लैण्ड में ऋण उठाकर उन्हें भुगतान किया गया था । बहुत से न्यायप्रिय अंग्रेजों ने भी इन अदायगियों के अन्याय का विरोध किया था । मगर इन विरोधो के बावजूद इग्लैण्ड के बहुमत वाले राजनीतिक दलों ने भारत के प्रति एक जैसी नीति का पालन किया था । 1867 में दादाभाई नौरोजी ने अंग्रेजों से स्पष्ट कहा था कि असंतुष्ट 20 करोड़ लोगों और 9 लाख विदेशी संगीनों के बीच संघर्ष का अंतिम फल क्या होगा इसकी भविष्यवाणी के लिए किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं है एक बूँद पानी कुछ नहीं कर सकता किन्तु जब सैलाब होगा तो वह कभी–कभी हर चीज को बहा लेगा । एक असंतुष्ट राष्ट्र सैकड़ों बार असफल

हो सकता है और फिर खड़ा हो सकता है मगर एक विदेशी के लिए एक दो हार ही प्राणघातक हो सकती है । भारतीयों की हर असफलता उनके बोझ को बढ़ाएगी और इस तरह से विदेशी जुए को फेंकने के लिए उनको और: अधिक देगी वेलवी कमिशन के सामने दादाभाई नौरोजी ने बहुत ही क्रोध नन्हा था कि भारतीयों के साथ इस तरह का अन्याय नहीं होना, जिसमें ब्रिटेन के पापों का मार उनको वहन करना पड़े ।

आर. सी. दत्त ने इसके शोषण के और भी अधिक उग्र परिणाम हैं, उनका कहना है कि भारत में वसूले हुए राजस्व का चौथा हिस्सा प्रतिवर्ष गृह खर्च (हाउस चार्जेज) ग्रुप में इग्लैण्ड भेज दिया जाता है और यदि इसमें उस भाग को भी जोड़ दे तो यूरोपीय आफीसर प्रतिवर्ष भारत में मिलने वाले अपने वेतन का इग्लैण्ड भेज देते हैं तो भारत से इग्लैण्ड भेजा जाने वाला राजस्व और भी अधिक बढ़ जायेगा । पृथ्वी पर का सबसे अधिक धनी देश इस पर के सबसे निर्धन देश से यह वार्षिक लूट के लिए अन्याय करता है । इससे भारत की गरीबी और बढ़ती जाती है और इस बढ़ती गरीबी के कारण इग्लैण्ड का भारत के साथ व्यापार भी घटता है । भारत की इस लूट से ब्रिटिश वाणिज्य और ट्रेड को भी कोई लाभ नहीं होता जबकि यह भारत के जीवन रक्त को लगातार निरन्तर खींचता रहता है ।

जब किसी देश से कर लिया जाता है और उसी देश में वह खर्च होता है तो रुपया लोगों के बीच चालू रहता है । व्यापार उद्योग और कृषि का विकास होता है और किसी न किसी रूप में सामान्य लोगों तक को यह लाभ मिलता है । किन्तु जब एक देश में लगाये गये कर उस देश से बाहर मेज दिये जाते हैं तो उस देश के लिए वह धन सदा के लिए नष्ट हो जाता है । इससे उस देश के वाणिज्य और उद्योग को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता और किसी भी रूप में वह धन लोगों के, पास नहीं पहुंचता है । भारत के राजस्व का इतना बड़ा भाग देश के बाहर भेज दिया जाता है और यह किया वर्षों से चलती रही है तो यह एक जादू ही होगा कि इसके बाद सबसे धनी देश भी निर्धन नहीं हो जाय ।

जो गृह खर्च (होम चार्जेज) हैं वे इग्लैण्ड में खर्च किये जाते हैं । (1) भारतीय ऋण पर देय सूद के रूप में (2) रेलवे पर सूद के रूप में, (3) नागरिक और सैनिक खर्च के रूप में । किन्तु ज्ञात हो कि इसका एक बहुत छोटा भाग सैनिक और दूसरे सामान जो भारत भेजे जाते हैं उन पर खर्च होता । इस देश में भ्रम फैला हुआ है कि सम्पूर्ण भारतीय ऋण ब्रिटिश पूंजी है, जो हिन्दुस्तान के विकास में लगायी गयी है । मगर यह बात नहीं है भारत के लोक ऋण की उत्पत्ति ऐसे नहीं हुई है जब 1858 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत का शासक नहीं रही तब उन्होंने भारत पर 7 करोड़ पौण्ड का ऋण लाद दिया था उसी समय उन्होंने वित्तीय दृष्टि से अन्यायपूर्ण भारत से 15 करोड़ लाख पौण्ड की सलामी ली थी, और इसमें सूद शामिल नहीं था उन्होंने भारत पर ही अफगान युद्ध, चीनी युद्ध और भारत के बाहर दूसरे युद्धों का भी भार लाद दिया था । अत: अगर न्याय की बात हो तो भारत कम्पनी शासन के अंत के समय किसी ऋण का भागी नहीं था । भारत के लोग ऋण की बात तो एक मिथक है । दूसरी और दस करोड़ पौण्ड का संतुलन उसके पक्ष में था जो धन अब तक उससे लिया गया था । सम्राट के शासन के 18 वर्षों के बाद ही भारत का लोक ऋण दूना हो गया । 1877 में जब रानी "कैसरे

हिंद " हो गयी तो यह ऋण 14 करोड़ पौण्ड था । 1877 और 1900 के बीच यह लोक ऋण 13 करोड़ 90 लाख से 22 करोड़ 40 लाख हो गया । यह गारंटीड कम्पनीयों अथवा राज्य द्वारा रेलपथ निर्माण के कारण अधिकांश में हुआ जिसकी अभी भारत को नितांत आवश्यकता नहीं थी एवं जो भारत की ताकत के बाहर था यह बहुत अंशों में 1877 और 1787 के अफगान युद्धों के कारण भी हुआ । अत: भारतीय ऋण का इतिहास वित्तीय बुद्धिहीनता और अन्याय का दस्तावेज़ है । दत्त के शब्दों में भारत का निर्धनता आर्थिक कारणों से थी, और अगर ब्रिटेन की सारी आर्थिक कारवाईयों के बावजूद भी भारत समृद्ध रहता तो यह एक आर्थिक जादू का खेल होता किन्तु विज्ञान में जादू के लिए कोई स्थान नहीं है ।

18.6 भू–राजस्व

आर. सी. दत्त की दृष्टि में अंग्रेजों की भारतीय भू–राजस्व व्यवस्था भी उनके अपने स्वार्थ को दृष्टिकोण में रखकर ही की गयी थी । जिस तरह से उन्होंने स्वार्थपूर्ण नीतियों के द्वारा भारतीय उद्योग धंधों को चौपट कर दिया था और अंग्रेजों के उत्पादन और व्यापार को प्रोत्साहन दिया था । उसी तरह से उन्होंने भू–राजस्व व्यवस्था को भी अपने स्वार्थ के दृष्टि में रख के किया । उनकी एक व्यवस्था तो जमीदारी व्यवस्था थी, जिसमें रैयतों और सरकार के बीच एक बिचौलियापन था जिसे जमीदार कहा जाता था । इसी व्यवस्था में कुछ हेर–फेर के साथ एक दूसरी व्यवस्था थी जिसे महालवाड़ी व्यवस्था का नाम दिया गया । चिर स्थायी प्रबंध वाले क्षेत्रों को छोड़कर आर. सी. दत्त के शब्दों में ''भू–राजस्व की दर इतनी ऊंची थी कि तरक्की के लिए धन लगाने के लिए कुछ नहीं बचता था । बंगाल के चिर स्थायी प्रबन्ध वाले क्षेत्रों में माल गुजारी जमीन की कुल उपज के 11% से कुछ ही ऊपर था । अस्थायी वाले गुजरात में भू–राजस्व की 20% था । यही माल गुजारी उत्तर भारत में 50% थी । मध्य प्रदेश में व्यवहारिक रूप से 79% थी । बाम्बे और मद्रास में जहां रैयतवाड़ी प्रथा थी, वहां व्यवस्था और भी अधिक खराब थी और जब–जब नई व्यवस्था होती थी तो कर और भी बढ़ा दिये जाते थे । आर. सी. दत्त के शब्दों में कर का भार हमेशा बढ़ता जाता था और इन प्रान्तों में खेती की खर्च ओर सरकार का लगान देने के बाद कोई अतिरिक्त उपज नहीं बच जाती थी । इसका परिणाम पीछे बहुत भयानक हुआ । उद्योग–धन्धे और व्यापार तो पहले ही नष्ट हो चुके थे । जीवनयापन का साधन केवल कृषि ही थी और यहां पर उद्योग कन्धों के नष्ट होने के कारण कृषि पर भार बढ़ गया था । इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में इन क्षेत्रों में बार–बार अकाल पड़ने लगे थे, और लोग मरने लगे थे । यही भारत वर्ष में ब्रिटिश शासन का कच्चा चिट्ठा था ।

18.7 उद्योग, वाणिज्य तथा कृषि का हास :

पिछले पृष्ठों में बार–बार यह चर्चा हुई है कि अंग्रेज कम्पनी अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए आयी थी, उनकी वाणिज्य नीति ही यह रही कि वे अपने व्यापार को बढ़ावा दे और उनकी इस नीति के कारण और भेद–भावपूर्ण चूंगी नीति के कारण भारतीय व्यापार भी नष्ट हुआ और भारतीय कुटीर उद्योगों का भी नाश हुआ । अपने राजनीतिक प्रभाव का व्यवहार

कर कम्पनी की सरकार ने भारतीय उद्योग धंधों का गला घोंट दिया यह तो उन्होंने वाणिज्य के युग (ऐज ऐट मरकनटिलिज्म) में किया । फिर भारत के आर्थिक शोषण से इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति को बल मिला । और भारत में नये –उद्योग–धन्धों को पनपने नहीं दिया गया । कम्पनी के शासन के बाद भारत में एक नये युग का सूत्रपात हुआ वह नये साम्राज्यवाद का युग था । इसे वित्तीय पूंजीवाद (फिनेन्शियल कैपीटलिज्म) का भी युग कहते हैं । भारत की आर्थिक दशा दिनों–दिन बिगड़ती गयी । इन तीनों युगों को शोषण नीति का आर. सी. दत्त ने अपने आधुनिक भारत की दोनों जिल्दों में बड़ा ही विशद् वर्णन किया है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय कृषि का वाणिज्यिककरण होने लगा और भारतीय व्यवस्था का बहुत तेजी से औपनिवेशिकरण होने लगा । भारत ब्रिटेन के लिए कच्चा माल पैदा करने वाला रह गया और उसके उद्योगों की खपत का बाजार हो गया । भारतीय कृषक अब ऐसी चीजों की उपज भी करने लगे जिनको बाहर ही भेजा जाने लगा । खाद्य सामग्रियों की उपज में कमी आयी । इससे भी इस युग में बार–बार अकाल पड़ने लगे ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय कुटीर उद्योग, व्यापार और कृषि का ह्रास हुआ; और भारत की गरीबी असहनीय हो गयी ।

18.8 यातायात के साधन (रेलवे, सड़क तथा सिंचाई) की असंतुलित व्यवस्था :

अंग्रेजी शासन के विनाशकारी स्वरूप का चित्र आर. सी. दत्त ने यातायात के साधनों के विकास के सिलसिले में भी खींचा है । भारत जैसे कृषि प्रधान देश में रेल पथ से सिंचाई के साधनों को बढ की बहुत अधिक आवश्यकता थी । मगर सिंचाई पर बहुत कम धन दिया गया । फिर रेल पथ का निर्माण भी सरकार के हित को भी दृष्टि में रखकर किया गया । रेल पथ को बड़े –बड़े व्यापार केन्द्रों से जोड़ दिया गया ताकि भारत का कच्चा माल बाहर जा सके और वहां से तैयार माल आसानी से देश के भीतरी भागों में पहुंचाया जा सके । फिर रेल पथों से अंग्रेजों के दृष्टिकोण से सामरिक महत्व के केन्द्रों को जोड़ दिया गया ताकि 1857 की स्थिति पैदा होने पर उसे आसानी से कुचला जा सके । रेल पथ निर्माण के समय जल के स्वाभाविक बहाव को भी ध्यान में नहीं रखा गया । जिससे पीछे बड़ी हानि हुई । इससे न तो जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति हुई और न इसके निर्माण के लिए जनता में धन था । इसलिए सरकार ने गारंटिड कम्पनियों को न्यूनतम लाभांश का आश्वासन देकर रेल पडा निर्माण को प्रोत्साहन दिया । इस खर्च का सारा बोझ भारतीय जनता पर पड़ा, और वित्तीय शोषण से कराह रही जनता के ऊपर यह अतिरिक्त मार बढ़ ।

कहना नहीं होगा कि सरकार की यही नीति पथ–निर्माण के क्षेत्र में थी । यहां भी अंग्रेज व्यापारियों, वित्तीय निवेशकों और साम्राज्य के हित को ही सामने रखकर पूंजी लगायी गयी । भारतीयों की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ बल्कि उनकी दशा और भी बिगड़ती गयी ।

18.9 सारांश :

पिछले पृष्ठों में हम आर. सी. दत्त एवं दादाभाई नौरोजी दोनों ही के विचारों और पुस्तकों का विवेचन कर चुके हैं । पश्चिमी इतिहासकारों ने ही आधुनिक आधार पर भारत का इतिहास लिखना शुरू किया, मगर वे इतिहासकार चाहे उदार हो, अनुदार हों, दार्शनिक दृष्टिकोण वाले हों अथवा वस्तुनिष्ठ हों एक अर्थ में वे स भी एकमत थे कि भारतीय संस्कृतिहीन थी एवं भारत और पूर्वी देशों की तरह ही निरंकुशता का शिकार था, कि भारत में अंग्रेजों के पहले एकीकृत शासन नहीं था कि भारत को पश्चिम की रोशनी की आवश्यकताओं और पश्चिमी शिक्षा से ही भारत का उद्धार हो सकता था कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए वरदान था । अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों में इस भावना के विरूद्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में प्रतिक्रिया का एक ऐसा वर्ग भी तैयार हुआ, जिसने आर्थिक दृष्टिकोण से अंग्रेजी शासन को बड़ा ही अनष्टिकारी और घोर निराशाजनक बताया । ऐसे विद्वानों में आर. सी. दत्त और दादाभाई नौरोजी प्रमुख है । दोनों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से अंग्रेजी शासन की कटु आलोचना की, उसके खोखले दावों का पर्दाफाश किया और यह स्थापित करने कि कोशिश की कि भूखे भारत से अंग्रेजी साम्राज्य को हानि होगी; और भारत की गरीबी इग्लैण्ड के लिए प्राणघातक होगी । उनकी विचारधारा आर्थिक राष्ट्रवाद (इकोनोमिक नेशनलीज्म) के नाम से जानी जाती है । इन दोनों इतिहासकारों ने बड़ा ही तर्कपूर्ण और युक्तिसंगत ढंग से ब्रिटिश शासन के खोखलेपन को उजागर किया, और साम्राज्यवाद के नैतिक आधार को समाप्त कर दिया ।

18.10 बोध प्रश्न –

1. स्वतंत्रता पूर्व भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की त्रुटियों को संक्षेप में समझायें ।
2. आर. सी. दत्त द्वारा भारतीय भू–राजस्व पर किये गए सर्वेक्षण पर अपना मत लगभग दो सौ शब्दों में व्यक्त कीजिए?
3. दादाभाई नौरोजी की दृष्टि में भारत में ब्रिटिश आर्थिक नीति की सबसे बड़ी कमजोरी क्या थी, इस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?
4. आर्थिक शोषण (ईकोनामी ट्रेन) से आप क्या समझते हैं? इस पर आर. सी. दत्त और दादाभाई नौरोजी के विचारों को तीन सौ शब्दों में स्पष्ट कीजिए?
5. अंग्रेजों की रेल पथ निर्माण नीति क्या भारत के हित में थी? अथवा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लाभ को दृष्टि में रखकर दो सौ शब्दों में अपने विचार स्पष्ट करें?

MAHI-04/ISBN13/978-81-8496-263-5